अमृत विचार

लोक दर्पण

रविवार, 4 फरवरी 2024

www.amritvichar.com

लोक साहित्य किसी भी भाषा, प्रांत या जाति का हो, उसमें माटी की सुगंध समाहित होती है। साहित्य को निखारने में लोकगीत, लोकभाषा, लोकोक्तियां, लोक कथाएं और लोक शब्दावली का विशेष योगदान होता है। एक तरह से साहित्य की परंपरा का श्रीगणेश ही लोक साहित्य से होता है। लोक साहित्य का अर्थ ही है-लोक में रचा-बसा और गुंथा हुआ। लोक साहित्य वही है जिसमें आंचलिक संस्कृति, रहन-सहन, आचार व्यवहार, जीवनयापन प्रतिबिंबित हो। कल्पनिकता के तत्व रंच मात्र न हों। त्योहार, ऋतु परिवर्तन, सामाजिक यथार्थ, खेत-खलिहान हर जगह लोकगीत ही गूंजते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु संस्कार तक में लोकगीत गाए और पाए जाते हैं। दैनंदिन जीवन एवं मन में उमड़ने-घुमड़ने वाले भाव ही लोक साहित्य की लिखित-अलिखित संपदा होते हैं। हालांकि द्रविड़ परिवार की भाषाओं-तमिल, कन्नड़-मलयालम और तेलगु के लोक साहित्य में स्थानीयता के आधार पर सूक्ष्म भिन्नताएं दिखती हैं, पर लोक साहित्य को सभी भाषाएं अपने-अपने ढंग से समृद्ध करती हैं। दक्षिण भारत का लोक साहित्य बहुरंगी और जीवन रस से लबालब है।

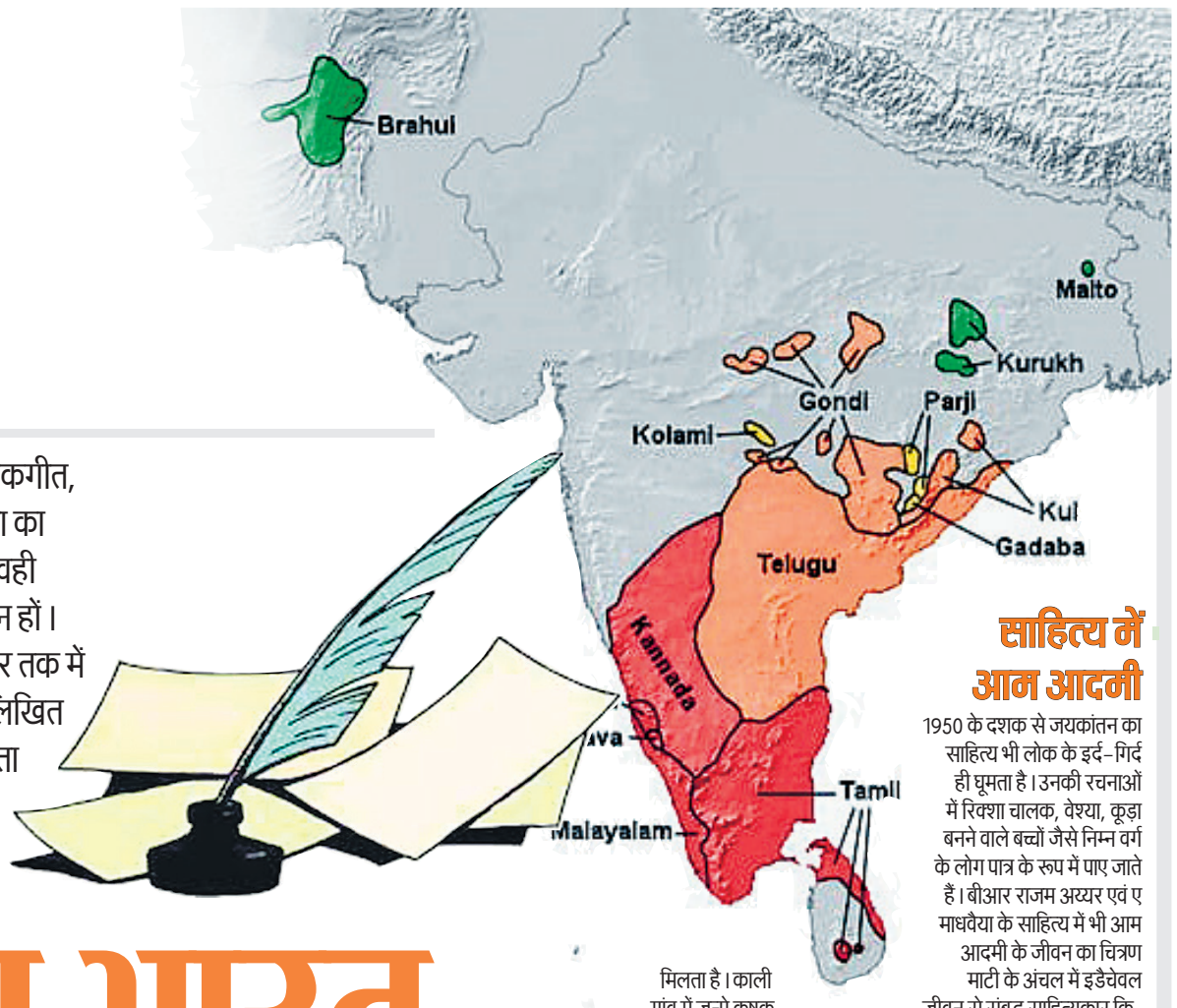

साहित्य में आम आदमी

1950 के दशक से जयकांतन का साहित्य भी लोक के इर्द-गिर्द ही घूमता है। उनकी रचनाओं में रिक्शा चालक, वेश्या, कूड़ा बनने वाले बच्चों जैसे निम्न वर्ग के लोग पात्र के रूप में पाए जाते हैं। बीआर राजम अय्यर एवं ए माधवैया के साहित्य में भी आम आदमी के जीवन का चित्रण मिलता है। काली माटी के अंचल में इडैचेवल गांव में जन्मे कृषक जीवन से संबद्ध साहित्यकार कि. राजनारायणन नायकर का साहित्यिक जीवन 1958 से प्रारंभ होता है। उनकी कहानियों में भी मानवतावादी स्वरूप मुखरित है। उनके लेख और लघु कथाएं कालजयी हैं। उनकी कृति करिसल काट्टु कडुदाशि (काली माटी के अंचल से) पत्र साहित्य और रेखाचित्र साहित्य के मिश्रण से नई विधा उत्पन्न करती है। कहानी कुत्ते, हैवानियत, गुंडे और देवता, आठवां झोंका आदि लोक से ही निकली हुई हैं। हालांकि पाश्चात्य प्रभाव से परिपूर्ण रेखाचित्र साहित्य व. रामास्वामी अय्यंगार ने वर्ष 1920 में ही लिखना शुरू कर दिया था। इस तरह कहा जा सकता है कि तमिल भाषा का लोक साहित्य पहले से ही अति समृद्ध है और आधुनिक युग के साहित्यकारों ने भी लोक साहित्य की रचना कर पुरातन परंपरा को अक्षुण्णता प्रदान की और कर रहे हैं।

दक्षिण भारत

लोक साहित्य का 'आलोक'

गौरव अवस्थी
रायबरेली

तमिल साहित्य- यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि द्रविड़ परिवार में मुख्य भाषा का पद तमिल को ही प्राप्त है। तमिल साहित्य का ज्ञात इतिहास दो हजार साल पुराना है। लोक साहित्य इससे भी अधिक पहले का है। माना जाता है कि तमिल के लोकगीत तमिलनाडु के पहाड़ों और नदियों के जितने ही पुराने हैं। वह जीवन रस से इस कदर लबालब भरे हुए हैं कि आज तक पुराने नहीं पड़े। इनमें तमिल प्रजा की आंतरिक आकांक्षाओं, मनोवेदनाओं, हर्ष-शोक, राग-द्वेष, सुख-दुख और वासनाओं का प्रतिबिंब नजर आता है। एट्टुथोगै, पतिनेन-कीलकनक्कु आदि काव्य संग्रहों से सिद्ध होता है कि वे किसी मौखिक परंपरा के अविस्मरणीय गीतों के वर्गीकृत एवं लिपिबद्ध संकलन हैं। तमिल लोकगीतों का संग्रह आरंभ में यूरोपीय विद्वानों द्वारा किया गया। भारत के परंपरावादी विद्वानों ने इन बातों को हेय दृष्टि से देखा, लेकिन अब उनकी स्वीकृति साहित्य के महत्वपूर्ण अंग के रूप में हो चुकी है। लोकगीतों और लोक कथाओं का समावेश विद्यालयों के पाठ्यक्रम में भी किया जाने लगा है। इतना ही नहीं लोक साहित्य पर विश्वविद्यालय में अनुसंधान भी शुरू हो चुका है।

इलांगो आदिगल के शिलप्पादिकारम नामक संकलन में समुद्र तटीय, शिकारियों, ग्वालिनों और पहाड़ी प्रदेशों की किरात बालाओं के गीतों का क्रमबद्ध संचयन पाया जाता है। तमिल के प्रमुख कवि इलगी ने अपने महाकाव्य के 30 सर्गों में 4 सर्ग केवल लोकगीतों में ही रचे। उन्होंने अपने इन गीतों में कावेरी मछुआरों, शिकारी वर्ग का जीवन, गाय चराने वाले बालक-बालिकाओं की भावनाओं को ही मुख्यतः अभिव्यक्त किया है। उन्होंने दक्षिण भारत की भक्ति मुरुक, कार्तिकेय की भक्ति, खेत खलिहान, राजा की कीर्ति आदि के संदर्भों को भी अपने गीतों में स्थान दिया। इसी से उनका महाकाव्य आज भी जीवंत बना हुआ है।

तमिल साहित्य के दूसरे महाकाव्य 'शिलप्पादिकारम' में भी लोकगीतों से लेकर ग्राम गीत पाए जाते हैं। छंदबद्ध कविता में प्रस्फुटित इस महाकाव्य से प्रमाणित होता है कि उस कालखंड में भी महिलाओं को बैरागिनी और भिक्षुणी का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। वैसे तो यह महाकाव्य धर्म प्रसार के लिए नहीं लिखा गया,पर इस महाकाव्य को तमिल का सर्वप्रथम धर्म ग्रंथ अवश्य माना गया।

खेती किसानी के वक्त किसान अनेक प्रकार के लोकगीत गाते हैं। मसलन लंबे बांस में बंधी हुई मोट और बैलजोड़ी की सहायता से सिंचाई के कुएं से पानी उलीचते समय किसान 'एट्र पत्तु' नामक गीत गाते हैं। इसका अर्थ है कि बांस की पत्तियों पर सोई हुई ओस की बूंद को संबोधित करना।

तमिलनाडु के किसानों ने अपने युगों के अनुभव के आधार पर बहुत सी कहावतें भी गढ़ीं। जैसे - 'एचवन एल्लु विथई' 'वदिनावन विरगु विथई' 'कोलुतवन कोल्लु विथई' 'सोत्रक्कु इल्लतवन सोलम विथई'। इन कहावतों में निर्धन किसानों को तिलहन बोने की राय दी गई है,क्योंकि इस फसल को अधिक वर्षा या पूंजी की आवश्यकता नहीं होती। एक और कहावत है- 'एडिप्पट्टम तेडी विथई'। इसमें किसानों को बीज बोने के पहले मौसम का ध्यान रखने की सलाह दी गई है। भक्ति साहित्य एक तरह से लोक साहित्य ही है शैव संप्रदाय के नायन्मार एवं वैष्णव संप्रदाय के आल्वार भक्तों ने गृहस्थ जीवन के साथ भक्ति का प्रचार किया। उनका साहित्य भक्ति, ज्ञान एवं दर्शन की त्रिवेणी है। प्रोफेसर ललिता रवीन्द्रनाथ की हिंदी में अनुवादित एवं नव प्रकाशित पुस्तक तिरुप्पावै एक महत्वपूर्ण कृति है। यह कृति हिंदी भाषियों को वैष्णव परंपरा के 12 आल्वारों के भक्ति साहित्य से परिचित कराती है। भक्ति साहित्य भी एक तरह से लोक साहित्य ही है। वह लोक को जोड़ता चलता है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास हों या महाकवि कंबन, आज तक उनका भक्ति साहित्य लोक में ग्राह्य है। सर्व स्वीकृत है, क्योंकि इन ग्रंथों की भाषा स्थानीयता से ओतप्रोत है।

सबरीमलै जाने वाले भक्त रास्ते में अयप्पा गीत गाते हैं। महालिंग स्वामी मंदिर जाने वाले भक्त वली नादैच्चिदु से प्रारंभ होने वाला गीत गाते हैं। यह थके मांदे यात्रियों में जोश जगाने वाला गीत है। इसी तरह 'सालइयले रेण्डु मारम' से आरंभ होने वाला लोकगीत भी राहगीरों का प्रिय तराना है। लोकगीतों में लोरियां भी काफी प्रचलित हैं। लोरियों के विषय बहुरंगी होते हैं। पेरेयाल्वार ने श्रीकृष्ण को संबोधित करते हुए दस लोरियां गाईं हैं। प्रत्येक का अंत 'तलेलो' से होता है। सामाजिक और महाकाव्यात्मक गाथा गीत भी तमिल लोक साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। तमिल संगम साहित्य में भी पर्वों एवं गृहस्थ धर्म के उल्लेख प्राप्त होते हैं। जैसे पंगुनिउत्तिरम, कार्तिक पूजा, तैनीराडल। इस साहित्य में भी ग्रामीण जीवन से संबंधित विवरण, उपासना पद्धति और आस्था आदि के दर्शन होते हैं। ग्रामीण अध्यनार, चात्तन्ख, कडम्बन करुण्व्यान, गंगैयम्मन, चतुक्कभूतम आदि अनेक ग्राम्य देवता की पूजा के उल्लेख भी लोक साहित्य से सन्नद्ध माने जाने चाहिए। तमिल नीति ग्रंथ-कुरल, नालडियार, पल्मोलि, नान्मणि, कडिकै, एलाद में जीवन के विविध पक्षों की चर्चा भी हमें लोक साहित्य की तरफ ले जाती है। 'आचारक्को' भी जीवन के आचार विचार पर चर्चा करके लोक साहित्य को समृद्ध करता है। तमिल में लोकगीत 'नाट्टपुरप्पाडल' नाम से प्रचलित है। संगम काल के पूर्व ऐसे तमाम लोकगीत वाचिक परंपरा में ही तमिल प्रदेश में काल-दर-काल गाए जाते रहे। शैव संत अरुणगिरि नायर का तिरुपुगल, अण्णमलै रेड्डियार का कावडिचिंदु एवं सिद्ध योगियों के गीत भी लोकगीत शैली में रचे गए। संगम कालीन काव्य कृति 'अकम' में तमिलों की पारिवारिक जीवनशैली का सुंदर चित्रण मिलता है। अकम कविताएं जीवन के हर क्षेत्र में पूर्णता, श्रेष्ठ जीवन की कामना एवं तमिल संस्कृति को महत्व प्रदान करती हैं। लोक कलाकारों ने भी ऐसे गीतों में कला का समावेश करके तमिल संस्कृति एवं लोक परंपरा को देश-विदेश में भी पहचान दिलाई। भरतनाट्यम, करकाट्टम, कावडियाट्टम, चित्रम्बाट्टम, मियलआट्टम (मोर नाच) लोक गीतों पर ही आधारित हैं। सीएन अण्णादुरै, डॉ. एम करुणानिधि ने अपने नाटकों के माध्यम से भी लोक साहित्य परंपरा को समृद्ध करते हुए समाज सुधार का मार्ग प्रशस्त किया।

महाकवि कंबन और सुब्रमण्यम भारती।

लोकगीतों का प्रचलन

जाति के नाम पर प्रचलित लोकगीत-गोल्लसुद्दल, एरुकुला, कुरवजि, जंगम कथा, विप्र विनोद, दासर चिंडलु, जालरी भागवत आदि भी लोक के महत्व को प्रदर्शित करते हैं। इस तरह आंध्र प्रदेश के लोकगीतों में लोक जीवन के विविध रूप परिलक्षित होते हैं। अस्मिता, प्राचीन परंपराएं, सामाजिक यथार्थ, स्त्री की मार्मिक पीड़ा, कृषि एवं पशुपालन संबंधित गीत आंध्र के लोक जीवन में प्रचलित हैं। आंध्र प्रदेश में ऐसी भी मान्यता है कि लोकगीतों की प्रणेता स्त्री ही है। स्त्रियों ने ही गीत को समाज से जोड़ा। स्त्रियों ने ही पहले पहल हास-परिहास, दुख-दर्द बांटने व समृद्धि को दृष्टि में रखकर गीत गाए और वहीं से लोकगीतों का प्रचलन प्रारंभ हुआ।

कन्नड़

कन्नड़ भाषा का लोक साहित्य भी अति समृद्ध है। इस भाषा में पुराण, इतिहास, गीत कथन, लावणी, काव्य, नाटक, मुहावरा, पहेली आदि विधा में लोक साहित्य मुखरित हुआ है। कन्नड़ में लोकगीतों को 'जनपद गीते' कहा जाता है। कन्नड़ का लोक साहित्य वर्बल आर्ट (मौखिक कला) में ही अधिकांशतः पाया जाता है। कन्नड़ में लावणियां काफी प्रसिद्ध हैं। यह गद्य और पद्य दोनों में ही गए सुनाई जाती है। इसमें मुख्य रूप से स्थानीय नायक को ही प्रस्तुत करने वाले गीत आते हैं। यह प्राचीन न होकर मध्य युग और आधुनिक युग की देन है। लावणी किसी प्रख्यात व्यक्ति के जीवन चरित्र को प्रस्तुत करने वाली होती है।

कन्नड़ में मैसुरू के महाराजा नाल्वडी कृष्ण राय, टीपू सुल्तान से संबंधित लावणियां अत्यंत चर्चित और प्रचलित हैं। उत्तर कर्नाटक के लोकगीत गई समूह गीत लावणी का ही छोटा रूप माना जाता है। स्वतंत्रता संग्राम में इस लोकगीत ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। गांधी और सुभाष चंद्र बोस के संदेश गीगी गीत गाकर ही जनमानस तक पहुंचाए गए। लावणी के सर्वाधिक प्रसिद्ध लोकगीत-कल्की बुराई लावणी, कथासार लावणी, नीतिसार लावणी, देशभक्ति लावणी हैं। स्वाधीनता के बाद कन्नड़ लोक साहित्य में और अधिक विस्तार हुआ। यह संयोग ही है कि उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद में जन्मे और कानपुर में रहने वाले हिंदी के प्रसिद्ध कवि लेखक पंडित प्रताप नारायण मिश्र भी लावणी गाते सड़कों पर निकलते थे। उनकी लावणी हास्य मिश्रित होती थी और इसमें अभिनय का भी पुट समावेशित रहता था। उनकी लावणी लोगों को काफी लुभाती और प्रेरित करती थी। उत्तर भारत में यह कम लोग ही जानते होंगे कि लावणी कर्नाटक के लोक साहित्य की चर्चित और प्रसिद्ध विधा है। कन्नड़ लोक साहित्य में कहानियों की भी भरमार है। इसमें मनोरंजनात्मक, उपदेशात्मक और सामाजिक कहानियां शामिल हैं। कई कहानियों के मुख्य पात्र जानवर ही होते हैं। इन्हें पंचतंत्रीय कहानी कहा जा सकता है। स्त्रियों के त्याग बलिदान, मां-बेटी, सास-बहू के संबंधों पर केंद्रित कहानियां भी कन्नड़ में पठनीय हैं।

कन्नड़ का लोक साहित्य का इतिहास 13 समूहों में विभक्त किया जाता है। इनमें- यक्षगान, सामगान, सण्णाट, वेशगारों की कलाएं, गुड़िया गुड्डों के खेल, तोगलुबोंबेयाट, कीलुगोंबेयाट, जनपद नृत्य, जनपद मोडि में आदि प्रमुख हैं। यक्षगान, ग्रामीण मूल की प्राचीन कला है। यह कर्नाटक के साथ सीमावर्ती केरल, आंध्र, तमिलनाडु आदि प्रदेश में भी प्रचलित है। गदगीमठ जीशंपा, कराकर, तिप्पेस्वामी, मतिघट्ट और कृष्णमूर्ति जैसे विद्वानों ने कन्नड़ लोक साहित्य की रचना में सराहनीय कार्य किया है।

तेलगु

तेलगु में लोकगीतों को 'जनपद गेयमुलु' कहते हैं। इन गीतों में समाज परिवेश की ही बहुतायत पाई जाती है। मकर संक्रांति का पर्व आंध्र की संस्कृति में रचा बसा हुआ है। यहां मुर्गे लड़ना सामाजिक संस्कृति का हिस्सा है। तेलुगु की ऐसी कई लोक कथाएं हैं जिसमें मुर्गे की लड़ाई में स्थानीय राजा-महाराजाओं और उन राज्यों के मर मिटने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें पल्नाटि वीर चरित्रम, बोब्बल कथलु प्रमुख हैं। बोब्बलि शहर विजय नगर जिले में कृषि पशुपालन खेती-बाड़ी आदि के लिए प्रसिद्ध है। कथाओं में राजा अपने मुर्गे को जीत के लिए बोब्बलि की आन-बान-शान की याद दिलाते हैं। आंध्र के लोक साहित्य में स्त्री पीड़ा और बाल गीत भी प्रमुखता से पाए जाते हैं। बाल गीतों में भाव प्रधानता की जगह लय प्रधानता ही अधिक होती है। आंध्र प्रदेश में दो प्रकार के लोकगीत प्रचलित हैं। एक, अशिक्षित जनता द्वारा गाए जाने वाले गीत- सुब्बी सुब्बी और हैलस्सा आदि। इन्हें अधिकतर मजदूर किसान सर्वहारा वर्ग ही गाते हैं। दो, विद्वानों द्वारा रचित लोकगीत- नंडूरि सुब्बाराव कृत- एंकि नायडू बाबा और कोनकल्ला वेंकटरत्नम कृत- मोक्क जोन तोटलो।

मलयालम- भू-प्राकृतिक संपदा के कारण केरल में लोक कलाओं और साहित्य का विशिष्ट स्थान है। केरल के लोकगीतों में प्रकृति के प्रति विश्वास और जनजातीय दिनचर्या मुख्य रूप से शामिल है। यहां की पनर जाति फसल काटने के साथ ही जागरण के गीत गाती है। पुल्लुवर जाति के लोग सर्प पूजा के समय समूह में गीत गाते और खुशी मनाते हैं। यहां के प्रमुख लोकगीत- तौट्टम, चडक्कन, पाडुक्कल, तैक्कन पाट्टकुल, मापिल्लापट्टु हैं। केरल का बड़ा भूभाग सागर से जुड़ा हुआ है। इसलिए लोक साहित्य चाहे वह गद्य का हो या पद्य का हो उसमें सागर समाहित रहता है। जिस तरह उत्तर भारत के लोग गंगा को मां मानते हैं। उसी तरह केरल के लोग सागर को माता का दर्जा देते हैं। मल्लाहों और मछुआरों के श्रम गीतों में यह भाव मुख्य रूप से प्रकट भी होता है। इन श्रम गीतों के बोल महत्वपूर्ण नहीं है, पर इनकी लय और ताल का कोई मुकाबला भी नहीं रहता। मछुआरों के एक लोकगीत की बानगी दृष्टव्य है-

खींचों खींचों मिलकर/ खींचों रे साथियों
जो भी खींचों तुरंत उठेगा/ मिलकर जो खींचों तो
पहाड़ भी उखड़ जाए..

मलयालम में पौराणिक कथाओं पर भी आधारित तमाम लोकगीत चर्चित और प्रचलित हैं। इस तरह हम कह सकते हैं कि ग्रामीण परिवार की सभी भाषाओं में लोक साहित्य अत्यंत समृद्ध है। लोक साहित्य की परंपरा आज भी जारी है। कई लेखक और कवि लोक से जुड़ी कथाएं और कविताएं लिखकर साहित्य और समाज की अमरता को भी रेखांकित कर रहे हैं।

पं.लखमीचंद की कृतियों का भाषाई सर्वेक्षण

रणवीर सिंह फोगाट
इतिहासकार

पंडित लखमीचंद को हरियाणा में लोक-संगीत नाट्यकार के तौर पर 'सूर्य कवि' के खिताब से नवाजा गया है। इनके द्वारा मंच पर प्रस्तुत की गई नाट्य-प्रस्तुतियों के लिखित में उपलब्ध रिकार्ड्स को अनेकों ने साहित्यिक पद्धति से अब तक कई बार प्रकाशित किया है। संपूर्ण कृतित्व से संबंधित मूल स्क्रिप्ट्स को ही आधिकारिक माना गया,जो संगीत प्रस्तुतकर्ता बने इनके पुत्र पं.तुलेराम के पास सुरक्षित रखे थे। इनके बारे में प्रकाशित अधिकांश सामग्री मैंने देखी और पढ़ी है। हरियाणवी भाषा में इनकी नाट्य-संगीत प्रस्तुतियों के जो साहित्य लेखकों और शोधार्थियों ने अब तक प्रकाशित किए हैं उनमें शब्दों के प्रयोग को लेकर हल्के से भेद हैं। लखमीचंद के कृतित्व को लेकर हुए शोधकार्य लिस्टिंग और नॉन-क्रिटिकल या प्रशंसात्मक टिप्पणियों से सराबोर हैं। लिट्रेरी एनालिसिस और क्रिटिकेलिटी कम ही है। भाषा विज्ञान को लेकर या भाषा शास्त्र के नजरिए से कोई अध्ययन मेरी खोजपूर्ण दृष्टि से यह परे रहा है। थोड़ा सा भी ऐसा एलिमेंट किसी लेख या समीक्षात्मक टिप्पणी में अगर है भी, वह सरफेस को छूने-भर वाला ही है। इसका कारण है पूर्वाग्रह। मेरा मानना है कि विश्वविद्यालयों में हिंदी लिट्रेचर विभाग में ज्यादातर टीचर्स की सोच उस स्तर पर नहीं रही कि वे लिट्रेरी क्रिटिसिज्म के ढांचे में संस्कृतनिष्ठ मूल्यांकन पद्धति या पश्चिम के आधुनिक ऊंचे स्तर के रिव्यु और लेखन पद्धति के डिजाइन से प्रेरित होकर रोमांचक साहित्य डेवलप कर पाए। हमारे ज्यादातर क्रिटिक्स उनके जैसी भाषा, मुहावरा, वाक्य संरचना और नजरिया प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं। अकादमीय जगत में यह व्यापक है और इसे तब तक नहीं लांघा जा सकता जब तक कि फोकलोर संबंधी साहित्यिक अध्ययनों को सोशियोलॉजी या इंग्लिश लिट्रेचर विभाग के टीचर नहीं संभालेंगे जिन्होनें जेएनयू या किसी और नामी विश्वविद्यालय में रहते हुए शोधकार्य संबंधी लेखन और प्रकाशन कार्य न किया हो या फिर ऑक्सफोर्ड, कैंब्रिज या शिकागो यूनिवर्सिटी से ये लोग पोस्ट-डॉक न किए हुए हों। संस्कृत लिट्रेचर में आलोचना, समीक्षा और मूल्यांकन की गजब की पद्धति रही है, लेकिन इसके नियमों से परिचय तभी संभव है जब शोध लेखन के लिए उद्धत आचार्य इन्हें खोजें, पढ़ें और समझें ही नहीं, बल्कि लोकवार्ता के मूल्यांकन के लिए इसे इस्तेमाल करना भी जानें। सामान्य-सी, आमतौर से उपलब्ध 'रिसर्च मेथोडोलॉजी' की किताबें पढ़कर और दक्षता के नाम पर इस बारे में एक औपचारिक तरीके का इम्तिहान पास करके वह सब नहीं हो पाएगा जिसकी अपेक्षा है। इसके लिए स्वाध्याय ही एकमात्र उपाय है।

संदर्भ के लिए कहना चाहूंगा कि 14 जनवरी के 'द संडे हिंदुस्तान टाइम्स' में अनीशा जॉर्ज ने सवा पन्ने में शेक्सपियर के बारे में इंग्लैंड और बाहर किए गए जिस तरह के अध्ययनों का हवाला देकर इस मध्ययुगीय नाट्यकार के साहित्यिक कार्यों के बारे में ब्रिटिश लिंगविस्टिक स्टडीज का हवाला दिया है वह चकित करता है। एक विवाद हुआ था कि शेक्सपियर ने 1000 से अधिक नए शब्द गढ़े,लेकिन शोध के नतीजों से तय यह हुआ कि सिर्फ 400 शब्द गढ़े गए,जो आज भी प्रचलित हैं और इंग्लिश गद्य में शब्दों और मुहावरे के बतौर प्रचलित हैं। मैं इसी संदर्भ में देखना चाहता हूं कि शेक्सपियर और लखमीचंद में क्या फर्क है? इन दोनों की नाट्यलेखन और मंचन प्रतिभा और इनके नाट्य-टेक्स्ट को लेकर साहित्यिक जगत में किस की क्या औकात रही है, यह स्पष्ट करना जरूरी है अन्यथा लखमीचंद को हरियाणा का शेक्सपियर कहने की जरूरत क्यों महसूस हुई? जरूरी बात यह है कि लखमीचंद के संगीत और इसके साहित्यिक रूप के बारे में हम क्या सोचते हैं, कैसे सोचते हैं और इसका एनालिसिस किस पद्धती से कर पाने की क्षमता रखते हैं? ऐसी स्थिति में मेरी समझ से यही उचित प्रतीत होता है कि हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जाट बहुत जिलों में सन् 1900 से 1950 के बीच सक्रिय रहे चुनिंदा संगीतज्ञों और नौटंकीकारों की प्रस्तुतियों को हमारा अकादमीय अध्ययन जगत इन्हें लोक नाट्यों के साहित्य के आधार पर 'री-क्रिएट' करें और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में मंच से प्रस्तुत करें। लिंग्विस्टिक्स विधा की दृष्टि से विश्वसनीय स्तर का थियेट्रिकल और लिट्रेरी एनालिसिस और विश्लेषण तभी संभव होगा, क्योंकि नाट्य में काव्य और नैरेशन दोनों होती हैं और डिलीवरी का स्टाइल भी स्थानीय बोली के अनुसार बदलता है। काव्य में बहुत से ऐसे शब्दों का इस्तेमाल होता रहा है,जो अभी प्रचलन से बाहर हैं या उस समय नए गढ़े गए थे,जब संगीतज्ञ अपने काल में सक्रिय रहे। पंडित लखमीचंद के सभी संगीत-नाट्यों की साहित्यिक कृतियों की सांस्कृतिक, तात्विक परीक्षा और लिंगविस्टिक के नाते स्टडीज करना इसलिए जरूरी नहीं है कि हम अपने खोए हुए शब्दों को पुनर्जीवित कर पाएंगे अपितु लोकनाट्य की विस्मृत विधा को जिस तरीके से हरियाणा में कुरुक्षेत्र और महर्षि दयानंद विश्वविद्यालयों ने फिर से जागृत करते हुए अंतर-विश्व-विद्यालयी युवा-उत्सओं में प्रस्तुतियों को मान्यता देकर लोकप्रिय बनाया है, उससे और भी असरदार बना पाएंगे। गए दिनों में संगीत प्रधान लोकनाट्य न केवल देहात में, बल्कि देहात से भर्ती हुए उन फौजियों के बीच भी लोकप्रिय रहे,जो युद्ध के मोर्चे पर थे या छावनी में। पहले और दूसरे महायुद्ध के जमाने में ही नहीं,बल्कि इससे पहले अंग्रेजों द्वारा अफगानों से लड़े गए चार भीषण युद्धों के दौरान हरियाणा क्षेत्र के जाट और रांघड़ सिपाहियों के मनोरंजन और तनाव मुक्ति के लिए अनेक संगीतज्ञों को फौज के बेस कैंप में बुलाकर कई दिनों तक सांग प्रस्तुतियां करवाई जाती और भजन गवाए जाते थे। किसी खास कॉन्टेक्स्ट में नए शब्दों और देहाती मुहावरा प्रयोग किए जाने से पंडित लखमीचंद जी ने श्रोताओं पर जो पकड़ बनाई उन रहस्यों को भी शायद हम लिंग्विस्टिक अध्ययनों की मार्फत प्रस्तावित शोध के जरिए से समझ पाएं। लिंग्विस्टिक स्टडीज के आधार पर ही क्यों, पंडित जी के जो भी श्रव्य एलपी रिकार्ड्स आल इंडिया रेडियो के आर्काइव्ज में हैं, उनके श्रवण से भी इनके म्यूजिकल कंटेंट और प्रस्तुतिकरण शैली का इन्वेस्टीगेशन करना में जरूरी समझता हूं। यह हैरानी की बात है कि हरियाणा के शोधार्थियों को इस किस्म के अध्ययन की जरूरत कभी महसूस क्यों न हुई?

हिंदी साहित्य में हुए शोधकार्य के प्रस्तुतिकरण की शैली और कंटेंट की प्रकृति को मैं जब भी देखता हूं, ऐसा अफसोस होता रहा कि यह अभी निम्न स्तर पर ही क्यों रहता है और हम ऑरिजिनल आइडियाज तक क्यों नहीं पहुंच पाए या टॉपिक्स या टाइटल्स की स्ट्रक्चरिंग सही से क्यों नहीं की? आजकल लोग 'कंपाउंड' किस्म के टाइटल्स का अन्वेषण करने पर खूब ध्यान करते हैं और टॉपिक को जटिल बनाकर ऐसे बड़े फ्रेम वर्क में डालते हैं कि शोधार्थी की अवलोकन, एनालिसिस और 'एलियन रेफरेन्सेस' की सूची देखकर पढ़ने वाला व्यक्ति चकित हो उठे। ऐसे काम के उद्धरणों के आधार पर ही नामी विश्वविद्यालयों के वरिष्ठ आचार्य बहुत सम्मान पाते रहे हैं। बहुत से भारतीय शोधकर्मी अब इसी नए दौर में आविष्कृत और संशोधित शैली को फॉलो करके लेख प्रस्तुत करने लगे हैं, लेकिन आईडिया अगर ओरिजिनल नहीं तो लेख की संरचना और वाक्य रचना कितना भी बढ़िया बना दी जाए पाठक को प्रभावित नहीं कर सकती। लेखक और प्रस्तुतकर्ता इसलिए असरदार नहीं होते कि उनका प्रयास लीक से हटकर नहीं होता है। साहित्यिक चोरी पकड़ने वाला सॉफ्टवेयर या 'एआई मॉड्यूल' (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) प्रस्तुत शोधकृति को या स्वीकार ही नहीं करेगा या इसे दस प्रतिशत तक स्वीकार्य टेक्स्ट-मिलन से अधिक का दिखाएगा। थीसिस और रिसर्च पेपर्स को प्रकाशन के लिए स्वीकार करने से पहले इसकी ओरिजिनेलिटी को आजकल सॉफ्टवेयर लगाकर और व्यक्तिगत अनुभव से ही जर्नल एडिटर्स जान पाते हैं। इस 'इंफेक्शन' को पकड़ते ही पेपर से आपत्तिजनक सामग्री हटाने का आग्रह भी नहीं किया जाता,बल्कि इसे रिजेक्ट कर दिया जाता है। भाषा ज्ञान के आधार पर अलंकृत टेक्स्ट लेखन भी शोध की मौलिकता में दिखाई देने वाली त्रुटियों या साहित्यिक चोरी को संवार नहीं सकता।

शब्द

दूरदर्शी और दूरदृष्टा

दूर की चीज देखने के लिए टेलीस्कोप या दूरबीन की तर्ज पर हिंदी में दूरदर्शी शब्द है,पर इसका प्रयोग बतौर उपकरण कम और दूर तक देखने वाले, चिंतनशील व्यक्ति के लिए ज्यादा होता है। जाहिर है दूरदर्शी व्यक्ति का आशय दूरदृष्टा की तरह ही होता है। दूरबीन या टेलीस्कोप की तर्ज पर इसे पर्याय मानने का आधार अर्थसाम्य है। संस्कृत में दूरवीक्षण भी कहा जाता है। बहरहाल बात दूरबीन की हो रही है,जो बुनियादी तौर पर फारसी लफ्ज है। 'दूर' संस्कृत में भी है और फारसी में भी। किसी स्थान या समय के संदर्भ में फासला या अंतर बताने के लिए प्रयुक्त यह अत्यंत लोकप्रिय शब्द है। इसे बोले बिना दिन पूरा नहीं होता। जब हम दूर-पास कहते हैं तो हिंदी का दूर बरत रहे होते हैं और जब दूरदर्शी के अर्थ में दूरंदेश बरतते हैं तो उसमें फारसी का दूर होता है।

अजित वडनेरकर
वरिष्ठ लेखक

स्पष्टता, बोधगम्यता- 'बीन' के मूल में अवेस्ता का 'वएन' है जिसमें दृष्टिबोध, नजर या निगाह का भाव है। अवेस्ताई 'वएन' का संस्कृत समरूप है वेन् / वेण् । इसका एक अन्य संस्कृत रूपभेद 'वयुन' भी है जिसमें भी गतिवाची आशय हैं। इसमें चलना, सक्रियता, चैतन्य के साथ प्रज्ञा, विद्या, बुद्धि, ज्ञान, विवेक आदि आशय भी हैं। इसी तरह वेन् में ज्ञान, बोध, चिंतन जैसे आशयों के साथ जाना, चलना, जानना, विचार करना जैसे भाव भी हैं। 'दूर' यानी 'फासले से' और 'बीन' यानी 'दृष्टि, नज़र, निग़ाह' को मिलाकर देखें तो दूरबीन में समझ, ज्ञान, दृष्य के संदर्भ में सरलता, स्पष्टता, बोधगम्यता जैसे आशय उभरते हैं, मगर प्रचलित आशय दूर का पास दिखाना हुआ।

दूरवीक्षण यंत्र- फारसी में भी दूरबीन का मूल आशय दूरदर्शिता वाला ही था,जो बाद में उपकरण के अर्थ में रूढ़ हो गया। वेन्/ वेण् का अवेस्ताई रूपांतर हुआ वएन। भारत-ईरानी भाषाओं में 'व' की तब्दीली 'ब' में होती है। इस तरह 'वएन' का रूपांतर फारसी में बीन हुआ। भारत-ईरानी परिवार की भाषाओं में डिस्टेंट, फार आदि आशय प्रकट करने के लिए 'दूर' शब्द का समान रूप से प्रयोग होता है। स्थान, काल आदि के बहुत कम या ज्यादा अंतर को व्यक्त करने के लिए दूर बरता जाता है। हिंदी में दूरबीन के लिए दूरवीक्षण यंत्र जैसा अनुवाद बनाया गया है,मगर यह प्रचलन में नहीं है। दूरबीन ही ज्यादा चलता है।

दूरदर्शी और दूरदर्शक- हालांकि वैदिक 'वेन' जिसमें ज्ञान, दूरदर्शिता, अंतर्दृष्टि, देखना आदि भाव थे, हिंदी में प्रचलित नहीं है। दूरवीक्षण में सिर्फ देखने की बात है,जबकि दूरबीन के स्थान पर 'दूरवेन' की कल्पना कर इसमें निहित दूरदर्शिता, ज्ञानबोध जैसे भावों को भी समझा जा सकता है। फारसी का दूरबीन भी सिर्फ यंत्र भर न होकर एक प्रयत्न है। प्रक्रिया है। अंततः साधना है। हां, हिंदी में दूरदर्शी, दूरदर्शक जैसे शब्द भी दूरबीन के पर्याय हैं,मगर दूरबीन जितने लोकप्रिय नहीं हैं। इनके अंत में यंत्र शब्द का प्रयोग करने से 'दूरदर्शिता' वाली गहराई लुप्त हो जाती है। कुल मिलाकर दूरबीन अब सिर्फ उपकरण है।

देखना, छानना, बीनना- बीन से बीनाई बनता है जिसका अर्थ नेत्र ज्योति है मसलन 'उसकी आंखों की बीनाई कमजोर है'। 'बीना' यानी देखने वाला। 'नाबीना' यानी दृष्टिहीन। अंतर्दृष्टि रखने वाला या अंतर्यामी को 'बीनादिल' कहते हैं। तफ्तीश, जांच-परख या इंक्वायरी के अर्थ में हिंदी में 'छानबीन' शब्द खूब प्रचलित है। यह भ्रम स्वाभाविक है कि छानबीन में जो बीन है उसका फारसी के बीनाई शब्द से रिश्ता हो सकता है। वस्तुतः छानबीन समस्त पद है यानी सामासिक शब्द है। इसके पूर्वपद में छानना क्रिया है और उत्तरपद में बीनना क्रिया है। हिंदी की बीनना को संस्कृत के विनयन से विकसित बताया गया है जिसका आशय है हटाना, दूर करना, सिखाना, शिक्षित करना आदि।

सीखने समझने की बात- गौर करें, शिक्षित करने, सिखाने में अज्ञान एवं बुरी वृत्तियों को हटाना भी शामिल है। विनयन में वही विनय है,जो शिक्षित व्यक्ति का गुण है। वैदिक क्रिया 'नी' में आगे ले जाने का भाव है। नेता, नेत्री, नेतृत्व जैसे शब्द इससे ही बनते हैं। 'नी' के साथ जब 'वि' उपसर्ग लगता है तो 'विनी' शब्द बनता है। इसमें नेतृत्व करना के साथ दूर ले जाना, हटाना, टालना, फेंकना, दूर करना, निकाल देना, छुटकारा पाना, निकाल देना जैसे भाव भी उभरते हैं। यही विनयन का आशय है। हिंदी में विनयन का 'व' बदल कर 'ब' हो जाता है। इस तरह बिनयन होने हुए बीनना क्रिया बनती है जिसमें मूलतः सफाई, छंटाई, मोचन आदि का भाव है अर्थात् किसी समूह से अवांछित पदार्थों को हटाना, दूर करना, फेंकना, निकालना आदि। इस तरह छानबीन पूरी तरह हिंदी का अपना शब्द है।

चलनी, छलनी, छन्ना- लगे हाथ छानबीन के पूर्वपद छान की बात भी कर ली जाए। हिंदी में छानना भी आम बोलचाल और रोजमर्रा के कामकाज का शब्द है। इसका रिश्ता संस्कृत की गतिवाची चल क्रिया से है। ध्यान दें, छानना क्रिया को संपन्न कराने वाले उपकरण को चलनी कहते हैं। अनेक स्थानों पर छलनी भी कहते हैं। मराठी में चालणी है। हिंदी में स, च, छ और झ में परिवर्तन होता है। तो चल् से चलन, चालन, चलना, चलनी हुआ। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना चलना है और किसी पदार्थ की अशुद्धि को दूर करने के लिए उसे एक पात्र से दूसरे पात्र में किसी जाली से (चलाकर) गुजारना 'चालना' यानी छानना हुआ। किन्हीं क्षेत्रों में 'ल' का बदलाव 'न' में हुआ। इस तरह चालना ही छानना हुआ। इसी प्रकार चलनी, छन्नी या छन्ना बन गई। ध्यान रहे 'ल' का बदलाव 'न' भी होता है और 'र' भी। 'चल्' का एक रूप 'चर्' भी है। चलन में भी गति है और चरण में भी। चरण ही चलना है यानी डग-पग है। चरण ही पैर हैं। विचरण यानी घूमना है। विचलन यानी अपने स्थान से हटना। अस्थिर रहना।

चलते चलते-बीन से रिश्तेदारी वाला एक और शब्द है सैरबीन,जो अब हिंदी में कम बरता जाता है,मगर उर्दू में बना हुआ है। किसी कोश में इसे कैलाइडोस्कोप कहा गया है तो किसी में बायस्कोप। मेरे विचार में कैलाइडोस्कोप में बहुरूपदर्शी वाला भाव है। घुमक्कड़ी, भटकंती के अर्थ वाला जो सैर हिंदी में आमतौर पर बोला जाता है। वह संभवतया सेमेटिक मूल का गतिवाची शब्द है जिसमें जाना, प्रस्थान, प्रयाण, यात्रा, गमन आदि भाव हैं। फारसी के बीन से जुड़कर सैरबीन में का आशय ऐसे उपकरण से जुड़ता है जिसमें दूरदराज की छवियों को देखते हुए सैर करने का अनुभव लिया जाए।

कविता

मन राम राम जपने लगा

मन जब से राम राम जपने लगा है।
जिंदगी का रहस्य तब से खुलने लगा है।।

राम जब से विश्वामित्र आश्रम हैं पधारे।
ऋषियों को हुआ आनंद सब काम है संवारे॥
जहां रासक्षों का आतंक हो रहा था।
उस जंगल में अब मंगल होने लगा है।।

मन जब से राम राम जपने लगा है।
जिंदगी का रहस्य तब से खुलने लगा है।।

राम अगर वन को न जाते,
राम कभी राम बन नहीं पाते।
शबरी के जूठे बेर यदि खाए न होते,
भक्तों के हृदय में राम समाए न होते।।
हनुमान की भक्ति का अब असर होने लगा है।

मन जब से राम राम जपने लगा है।
जिंदगी का रहस्य तब से खुलने लगा है।।

मन जब से राम राम जपने लगा है।
जिंदगी का रहस्य तब से खुलने लगा है।।

जगत के स्वामी स्वयं केवट से मिल रहे हैं।
मित्रता की पवित्रता जगत को समझा रहे हैं।।
जिनकी चरण-रज पाने को तपस्वी तरसते हैं।
उन चरणों को केवट मल-मल के धोने लगा है।।

मन जब से राम राम जपने

जगपाल सिंह भाटी
बरेली

गीत

ये मौसम क्या बिगाड़ेगा हमारा।
रहा ईमान जब पुख्ता हमारा।

बनाकर रख न दे इक दिन तमाशा,
कहीं ये प्यार इकतरफा हमारा।

न दे पाऊंगा लाकर चांद तारे,
समझ लो खूब ये कहना हमारा।

हमारी मुफलिसी में दोस्तों को,
बुरा लगने लगा चेहरा हमारा।

रिटायर नौकरी से क्या हुए हम,
न लगता 'ज्ञान' घर खुद का हमारा।

ज्ञानेन्द्र मोहन 'ज्ञान'
शाहजहांपुर

प्रेम ही जीवन का सार

मन के इस पार भी, मन के उस पार भी
प्रेम ही जीवन का सार है।

इस जहां से अलग एक संसार है
स्वप्न सारे जहां पर साकार है,
जो सोचा सारा मिलता वहां
जो इस दुनिया में जीने का आधार है,

मन के इस पार भी मन के उस पार भी
प्रेम ही जीवन का सार है।

छूट जाते हैं जग में नाते कई
मन का छूटा मन से जाता कहां,
यह भरम ही जीवन संभाले हुए
इससे ही मन का सब त्योहार हैं,

मन के इस पार भी,मन के उस पार भी
प्रेम ही जीवन का सार है।

जो वचन में बंधा ,अवचन ही रहा
मन का चंदन ,मन का कंचन रहा,
सारा संसार मिल कुछ न मिला
मन के हार पर सब मन का भार है,

मन के इस पार भी, मन के उस पार भी
प्रेम ही जीवन का सार है।

उतरे आकाश से देव भी रोए हैं
जब जब कोई राम जानकी खोये हैं,
न जोर नियति पर कोई यहां
हाथ की रेखा पर कब अधिकार है,

मन के इस पार भी, मन के उस पार भी
प्रेम ही जीवन का सार है।

रेखा शाह
बलिया

कहानी

यतीम

मुझे खाने दो...मुझे खाने दो। बड़बड़ाते हुए शरीफ हड़बड़ाकर नींद से जाग उठा। अंधेरी कोठरी में उसने इधर-उधर देखा पास रखी डिबिया शायद घासलेट खत्म हो जाने की वजह से बुझ गई थी। शरीफ चारपाई से उठा और कोठरी से बाहर आ गया। उसकी भूख की शिद्दत अब और भी बढ़ गई थी,क्योंकि उसने अभी-अभी ख्वाब में बढ़िया-बढ़िया लजीज खाने जो देखे थे। आधी रात का वक्त था। कुछ देर तक वह सोचता रहा फिर घेरनुमा चौपाल के एक कोने में खुदी कुईया के पास गया और दोलची डालकर पानी निकाल कर पीने लगा। भूख कम न होते देख शरीफ ने अपना अंगोछा पानी में भिगोया और पेट पर रख लेट कर सोचने लगा कि भूख कैसे मिटेगी? उसके होठों पर बस एक ही फरियाद थी- ऐ अल्लाह! पेट भर कर लजीज खाना मिल जाए। मैं भी लेना चाहता हूं इसका स्वाद कैसा है? इसके नशे में मदहोश होना चाहता हूं। यही सोचते हुए कब सहर हो गई पता ही नहीं चला।

राशिद हुसैन
इंजीनियर, मुरादाबाद

पूर्वोत्तर का झरिया गांव जिससे सटकर बहती नदी में आती साल दर साल बाढ़ से फसलें बर्बाद हो जाती थीं,जिस कारण खेती किसानी पर निर्भर इस गांव के लोगों की हालत दयनीय थी और इसी गांव के एक गरीब मजदूर किसान के घर पैदा हुआ था शरीफ। उसके जन्म के समय ही मां चल बसी। किसी तरह पिता ने पाला-पोसा और एक दिन वह भी टीबी की बीमारी से जूझता हुआ जिंदगी से हार गया। शरीफ की उम्र उस समय लगभग सात साल की रही होगी। बेसहारा हुए शरीफ को उसका मामा अपने साथ ले गया,लेकिन पहले से ही तंगहाली में गुजर-बसर कर रहे उसके परिवार में खर्च के एक और इजाफे से रोज-रोज के झगड़े होने लगे। आखिरकार मामा ने भी अपना पीछा छुड़ाते हुए उसका एक ऐसे स्कूल में दाखिला करा दिया, जहां पढ़ाई के साथ-साथ रहने खाने का भी इंतजाम था। स्कूल में रहकर शरीफ तालीम हासिल करने लगा कुछ महीने ठीक-ठाक गुजर गए,लेकिन अफसोस,शरीफ की किस्मत ने यहां भी साथ नहीं दिया। कुछ लोगों की मदद से चल रहे इस स्कूल के हालात भी काफी खस्ताहाल हो रहे थे। जैसे-तैसे स्कूल के बच्चों के साथ खाना मिल तो जाता, लेकिन पेट भरकर अच्छा खाने और तन ढकने के लिए नए कपड़ों के लिए उसे तरसना ही पड़ता। ऊपर से पढ़ाई के बोझ ने उसको स्कूल से भागने पर मजबूर कर दिया।

स्कूल में दोबारा वापस जाने के डर से शरीफ दूर और दूर भागता रहा और भटकता हुआ उत्तर प्रदेश के एक आर्थिक रूप से संपन्न गांव में आ गया। यहां पर किसान छिद्दआ ने अपने घेर में रहने की जगह दे दी जहां उसके मवेशी भी बंधते थे। कुछ दिनों तक उसके खाने का ख्याल भी किसान ने ही रखा।

शरीफ को लगा जैसे उसको खोया हुआ परिवार फिर से मिल गया हो,लेकिन धीरे-धीरे किसान का ध्यान उससे हटता गया। अब शरीफ को दोपहर का खाना तो मिल जाता,लेकिन शाम का इंतजाम भारी पड़ता। एक दिन शरीफ गांव में लगे साप्ताहिक बाजार में शाम तक घूमता रहा,उसने देखा पैठ उजड़ जाने के बाद कई दुकानदार बिकने से रह गई सब्जियां वहीं छोड़कर चले गए। शरीफ वहां से कुछ गाजरें उठा लाया और खाकर सो गया। सस्ते का जमाना था तब दुकानदार अक्सर बची हुई सब्जियां छोड़ जाते थे। शरीफ को यह तरकीब अच्छी लगी अब उसने आसपास के गांवों में लगने वाले साप्ताहिक बाजारों का पता किया और जिस दिन जहां बाजार लगता। वह चला जाता वहां से वह गाजर,मूली,खीरे,ककड़ी और टमाटर इत्यादि उठा लाता और खाकर सो जाता। एक दिन लगे बाजार में सभी दुकानदारों की सारी सब्जियां बिक गई

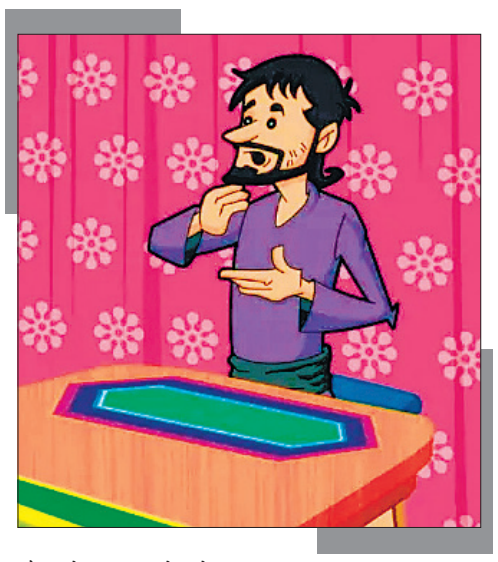

और छोड़कर जाने को कुछ नहीं बचा। शाम तक इंतजार करने के बाद शरीफ मायूस ही लौट आया और उस दिन वह पानी पीकर सो गया। सुबह उठने पर शरीफ ने लोगों के छोटे-छोटे घरेलू कामों में हाथ बंटाना शुरू कर दिया। चक्की से किसी के गेहूं पिसवा लाता किसी के लिए जलाने की लकड़ियां ला देता तो कोई उपले (कंडे) मंगवा लेता। इसके एवज में उसे एक वक्त का खाना मिल जाता और साथ ही अठन्नी-चवन्नी मिल जाती जिससे वह परेशानी में लगी बीड़ी पीने की लत को पूरा कर लेता।

घरेलू कामों से शरीफ को अब गांव के काफी लोग जानने लगे थे। इस पहचान का शरीफ को फायदा भी पहुंचने लगा। गांव में किसी की भी शादी-ब्याह होता वह बिन बुलाए पहुंच जाता और खूब पेटभर कर खाना खाता। धीरे-धीरे शरीफ की उम्र कटने लगी बचपन से गम झेलते-झेलते जवान हुए शरीफ की मायूसियां बढ़ रही थी। उसकी तन्हाई और अकेलेपन ने उसके दिमाग को कुंदकर दिया था जिसकी वजह से वह न चाह कर भी बेवकूफी भरी हरकतें करने लगता। इसी वजह से उसे अब गांव के लोग शरीफ बावला कहने लगे और वह इस नाम से पूरे गांव में मशहूर हो गया। गांव में जब भी किसी की बारात चढ़ती। लोग उसे चिढ़ाते शरीफ बावले तू भी शादी कर ले,दूसरे को दूल्हा बने देख शरीफ के दिल में भी लड्डू फूटते और कुछ देर के लिए आई उसके चेहरे पर मुस्कुराहट फौरन ही खत्म हो जाती। वह फिर सोचने लगता काश,उसका भी परिवार होता तो उसका भी घर बस जाता मगर अफसोस ऐसा नहीं हुआ।

वह सोचता मुझ यतीम के सर पर कौन हाथ रखेगा? कौन उसे अपनाएगा? बिना परिवार के कैसे कटेगा उसका बुढ़ापा? वक्त तेजी के साथ गुजरता गया शरीफ की उम्र भी अब पचास पार कर चुकी थी। उसकी दिमागी हालात भी धीरे-धीरे और खराब होती जा रही थी। ज्यादा बीड़ी पीने की वजह से वह ज्यादातर खांसता रहता,उसके जिस्म में अब पहले जैसी ताकत भी नहीं रही थी। गांव के लोग उसकी मदद तो करते पर अब उससे दूर ही रहते शरीफ तन्हाई से लड़ रहा था और बेबसी ने उसको जकड़ रखा था। अपना परिवार होने की तमन्ना और खुशहाल जिंदगी जीने की आरजू में जूझता हुआ उम्र के इस पड़ाव पर पहुंचा शरीफ अब काफी थकान महसूस करने लगा था। एक दिन उसे तेज बुखार चढ़ गया और हांफता कांपता वह वैद्य जी के पास पहुंचा। वैद्य जी ने खाने के लिए दवाई दे दी और साथ ही सर पर गीले कपड़े की पट्टी रखने की सलाह भी दी।

कम दिमाग शरीफ को जब जिस्म की तपन बर्दाश्त नहीं हुई तो वह घेर में लगे सरकारी नल के नीचे बैठ गया और नहाने लगा और वहीं पर उसका शरीर ठंडा होता चला गया। उसके प्राण पखेरू उड़ चुके थे। उस यतीम की हसरतें उसके दिल में ही दफन हो गई। वो अपनी शादी का खाना तो न बनवा सका मगर अपनी भाती (मृत्यु भोज) सबको खिला गया। गांव के कई लोगों ने मिलकर उसको सुपुर्दे खाककर दिया। उस दिन गांव में सभी को यतीम शरीफ की कमी का बहुत एहसास हुआ था।

समीक्षा

मनुहारों के शिखर

किसी भी रचनाकार का अनुभव संसार जितना विशद होता है,उसकी रचना में उतनी अधिक विविधता और परिपक्वता देखने को मिलती है जितने ज्यादा संघर्ष रचनाकार ने जीवन में किए होते हैं,उतनी व्यापक अनुभूतियां उसकी कविता में परिलक्षित होती है। गीत कवि लोकेश शुक्ल के काव्य संकलन 'मनुहारों के शिखर' में करुणा, प्रेम, धैर्य और सामाजिक विसंगतियों का बहुत गहरा मूल्यांकन मिलता है। मानव मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए तथा जीवन को सहज ही सुखमय बनाने की दिशा में कृतिकार कहता है- मन को जरा बदल कर देखो/ घर-चौबारे फिर महकेंगे। उनकी रचनात्मकता में संवेदनाओं का सहज प्रस्फुटन दिखाई देता है। उनके गीतों और मुक्तकों में कुशल चितेरे की तरह इंद्रधनुषी उपमाओं के रंग समाहित होते हैं।

यह गीत देखें- तुम अचानक आ गए मधुमास में फागुनी रंग छा गए। आकाश में लोकेश शुक्ल के दोहे समय और समाज के तमाम अनुत्तरित प्रश्नों का जवाब बन जाते हैं-

नफरत से निकले नहीं, नफरत वाला खार.
प्यार गिरा देता सभी, कटुता की दीवार.

भाई लोकेश जी अपने कार्य के प्रति सदैव समर्पित रहे। इस युगीन सत्य से इंकार नहीं कया जा सकता कि बाजारवाद और भौतिकतावाद के चकाचौंध संजाल में उलझे लोगों को स्वयं से संवाद करने का अवसर नहीं मिलता। हमारी ये चेतना कहीं गुम होती जा रही है। ऐसे में कवि कहता है कि बाहर नहीं तलाशो कुछ भी भीतर सब कुछ मिल जाएगा। हमारा विश्वास है कि लोकेश शुक्ल का यह काव्य संकलन पाठकों के बीच लोकप्रिय होगा और हिंदी साहित्य का उल्लेखनीय निधि बनेगा।

पुस्तक-'मनुहारों के शिखर' काव्य संग्रह
लेखक-लोकेश शुक्ल
प्रकाशक- भारतीय साहित्य संग्रह, कानपुर
मूल्य- 299 रुपए
समीक्षक -डॉ सुरेश अवस्थी

व्यंग्य

ठंड में रजाई बालम प्यारा लागे

घनघोर सर्दी का पड़ना और कुंवारा रहना कलयुग में कष्टकारी अभिशाप है। पूर्वजन्म का पाप है। किसी ऋषि के अपमान का श्राप है। जनम-जनम का दुःख भुलाया जा सकता है, लेकिन सर्दी को अकेले नहीं भुनाया जा सकता। अब पढ़ाई-लिखाई रोजगार खोजने में उम्र सरक कर पचपन जा रही है। बेरोजगारों को तो लुगाई भी नसीब नहीं है। सरकारी योजनाओं में लुगाई भी लैपटॉप-सा फ्री बंटने की मांग की जा सकती है। चुनावी मुद्दा बन सकता है। वैसे सर्दी में कुंवारा रहना राष्ट्रीय आपदा है। अगर आपदा है तो सरकार का फायदा है। इससे फायदा कुंवारे पचपन वालों का भी हैं। अभी तो दिल जवान है। उम्मीद पर दुनिया कायम है। दिल अभी मुलायम है। विवाह करने की कोई उम्र नहीं की जिद कायम है। भई कलयुग में भी कब्र पर बैठे उम्रदराज मर्द 24 उम्र वाली अप्सरा से विवाह कर कुंवारों को दर्द दे रहे हैं।

सूर्यदीप कुशवाहा
वाराणसी

ठंडी पियक्कड़ों के लिए बहाना है। गरमाहट का तराना है। मौसम में हुई चूक जाम से गर्म करते हैं। ठंडी संगीन और सनसनीखेज समय है। ऐसे में एहतियात ही बचाव है। इसीलिए ठंडी चाहे जितना कमीना निकले वह आराम से सुरापान करते हैं। बंदा और ठंडा देखने में कितना शरीफ लगता है, लेकिन बुलबुला उतना ही उठता है। शराफत की खाल कहां कोई उतरता है? पता नहीं किस जनम का बैर निकाला ठंडी ने, वे मयखाने में बॉटल में इस कदर डूबे हुए थे कि उनका नियत भी डूबा गया। डूबने वाले हर जगह डूब जाते हैं बिन नदी तालाब और समुद्र के। सर्दी में रजाई में डूबना सुकून देता है। जीने की वजह बन जाती है। विवाह का लड्डू न खाने का मलाल कुंवारों को होता है, पर भाग्य भी तो कुछ होता है। दुर्भाग्य के सामने तो सबकी घिग्घी बंध जाया करती है। हिम्मते मर्दे मददे खुदा। इस प्रकार वह होगा कुंवारेपन से जुदा। काली रातें भी रंगीन होंगी पर जिम्मेदारी होगी तब। हालांकि विवाह का जोखिम भी है, लेकिन जोखिम का सर्दी में फायदा भी है। फायदा तो हर कोई चाहता है। कुंवारों की सर्दी में सांसें मंहगाई की तरह उछलती हैं। सर्दी में नाक से तरल पदार्थ सब्जी के भाव की तरह लड़खड़ाने लगती है। डबल बेड और डबल बेड की रजाई दहेज की गारंटी है। हालांकि रजाई का साथ आने से कुंवारों को जेठ की दुपहरी का एहसास होता है। अकेले पतझड़-सा लगता है। सपने में बसंती बयार हिलोरे लेने लगती है। कुंवारे निरीह जीव सा सर्दी में देखे जा सकते हैं। शादीशुदा वालों से कुढ़ते हैं। उनके भाग्य को कोसते हैं, लेकिन लौट के बुद्धू घर को आए। उनको ठंड में रजाई बालम प्यारा लागे। इश्क उसी से करते हैं। रजाई तो उनकी जान बचाए, औरन का तो पता नहीं पर उनके काम ठंडी में आए। ठंडी में रजाई बालम बनकर निमोनिया से बचाती है। कुहरे, सर्दी, धुंध ने दिया दंड है तब बेचारे कुंवारों को तोड़ती ठंड से रजाई ठंडक देती है। ठंड में रजाई बालम ही सुरक्षा की गारंटी देती है। लुगाई भले धोखा दे दे,लेकिन रजाई धोखा न देती है।

बतकही

शादियों में सेल्फी का दौर

आजकल शादी का अवसर हो और सेल्फी पॉइंट न बना हो तो समाज का ताना सुनने को मिलना स्वाभाविक ही है। कितने पिछड़े लोग हैं, जरा भी आधुनिक नहीं हैं। उधर देखो डीजे तो लगवाए हैं और कुछ लोग बंदरों-बंदरियों की तरह उस पर कूद भी रहे हैं। उन कूदने वालों की प्रतिक्रिया देखनी हो तो अचानक जाकर जोर-शोर से बज रहा संगीत को बस म्यूट कर दो। फिर देखो उनके एक्शन ऐसा लगेगा पीटी की क्लास तल रही है। कुछ तो खिसियाकर डीजे वाले भैया पर ही गुस्सा उतारने लगेंगे। बात हो रही थी सेल्फी पॉइंट की, आज सेल्फी का प्रचलन इतना सबके दिलों में घर कर चुका है कि अगर आप ने सेल्फी के लिए इंतजाम नहीं किया तो आपकी खैर नहीं! आज अत्यधिक दकियानूसी करार किए जा सकते हैं। हालांकि आपके इस हरकत के बावजूद सेल्फी प्रेमियों के प्रेम की लगाम आपके हाथ नहीं आ पाती और इसका खामियाजा दूल्हा-दुल्हन को भुगतना पड़ जाता है जिसको पूछने वाला कोई नहीं होता, जिस सिंघासन पर बैठ दूल्हे को बलि का बकरा बनाया जाता है। उसका उद्घाटन तो पहले ही कई सेल्फी प्रेमी करने लग जाते हैं। कई उस पर बैठ अपने अतीत को याद करते हैं और दनादन फोटू खिंचवाते हैं। जैसे आज फिर से उन्हीं का दिन हो। कई अपने लाड़लों को बिठा राजकुमार सा फिलिंग वाली पिक पर भी जोर देते और कई जोड़े तो पति-पत्नी बन आदर्श जोड़े की तरह शर्माते-शर्माते अपनी सेल्फ़ी लेते हैं। इस क्रम में उस सिंघासन का तो कबाड़ा ही कर बैठते।

पहले जब बारात दरवाजे पर पहुंचती थी, ढेरों घराती और मेहमान उनके स्वागत को पहुंच जाते थे, जिन्हें देख नाचने वाले बारातियों का हौसला बढ़ जाता था। फिर तो दरवाजे पर ही आधे घंटे का नागिन डांस होता था, जिसे देख कोई भी झूमने से खुद को रोक नहीं पाता था, पर अब एक तो कोई स्वागत को आता नहीं, कोई भूले से पहुंच भी गया। वो बारातियों की तरफ पीठ करके सेल्फी की जुगाड़ में रहता है, तुरंत ही उसकी फेसबुक पोस्ट बनती है। दरवाजे पर आयी बारात, उसके बाद हर पांच मिनट में उस पोस्ट की हालचाल लेना भी जरूरी है कि कितनी लाइक कितने कमेंट, किसके कमेंट ने दो बूंद ख़ून बढ़ा दिया। आईए अब दूल्हा-दुल्हन की ओर रुख करें। बिचारे सेल्फी प्रेमियों द्वारा सिरे से खारिज हुए अपनी-अपनी कुर्सी (सिंघासन) पर बैठे मजबूरन एक दूसरे से बात करने को मजबूर हो जाते हैं। सालियां भी किसी न किसी कोने में सेल्फी लेकर उस दिन के सजावट की मेहनत और कीमत वसूल करने में लगी होती हैं और देवर लोग इन सेल्फी प्रेमियों के पीछे मडराते नजर आते, जैसे आज ही देवरानी ढूंढ इसी मंच पर जयमाल पहना देंगे।

सीमा राय द्विवेदी
लखनऊ

लघु कथा

ईमानदारी

सुमित बिजली विभाग के बड़े बाबू से मिला। बोला, सर जी कंपनी के लिए एक ट्रांसफार्मर चाहिए। कैसा? नंबर एक में या दो में?, समझा नहीं? नंबर एक वाला,दो लाख है और नंबर दो वाला पड़ेगा पचास हजार का और दो नंबर वाला पकड़ा गया तो? अरे! जब हम देंगे तो टेंशन न लो,परेशान कतई न हो? आजकल यही काम ईमानदारी से होता है,इसमें हम सबका फायदा। अपने साहब से बात करता हूं। सुमित ने अपने साहब को फोन मिलाया,पूरा सिजरा बताया। फिर फोन काटकर के बड़े बाबू की ओर मुखातिब हुआ-सौदा फाइनल सर जी। कल पेमेंट दूंगा। मेरा क्या परसेंट रहेगा सर जी! हें हें हें! तुमको भी मिलेगा। पर कितने परसेंट? पांच परसेंट। कुछ और बढ़ो। इससे अधिक नहीं हो सकता? ऊपर भी देखना पड़ता है। हां हां चलो ठीक है। मैं किसी के हक में डंडी नहीं मारना चाहता।

सुरेश सौरभ
लखीमपुर खीरी

सुपर फूड एवोकैडो

प्रकृति के फूल, पौधों और फलों में विविधता देखकर इंसान यह सोचकर हमेशा से आश्चर्यचकित हुआ है कि फूलों का रंग, फलों की खुशबू और उनका स्वाद भिन्न कैसे होता है? ऐसा ही एक कम प्रचलित फल है एवोकैडो। यह एक मध्य आकार का विदेशी मूल का सदाबहार पेड़ है, जो भारत में अधिकतर लोगों के लिए अंजाना है। इसका फल मध्य आकार का होता है, जिसे खाने पर मक्खन जैसा स्वाद महसूस होता है। इसीलिए सामान्य तौर पर इसे मक्खन फल या बटर फ्रूट भी कहते हैं। विदेशों में इसे टोस्ट और सैंडविच में लगाकर खाया जाता है और इसका उपयोग सलाद के तौर पर भी किया जाता है। वहां पर आइसक्रीम बनाने के लिए भी एवोकैडो का इस्तेमाल किया जाता है।

अमृता पांडे
स्वतंत्र लेखिका, हल्द्वानी

यह कैरिबियाई क्षेत्र से संबंधित फल है और पूरे विश्व में उष्णकटिबंधीय और भूमध्यसागरीय जलवायु में इसकी खेती की जाती है। इसका मूल दक्षिण मध्य मेक्सिको माना जाता है। एवोकैडो को एलीगेटर पियर्स के नाम से भी जाना जाता है और पर्शिया अमेरिकाना भी कहा जाता है। यह पहली बार मेक्सिको के तेहुआकन घाटी के पुएब्ला में उगाया गया था। दुनिया में पेड़ों की लगभग 73 हजार प्रजातियां हैं। एवोकैडो लॉरेसी प्रजाति का एक सदाबहार पेड़ है। यह बॉल की तरह गोल, कहीं नाशपाती के आकार के या अंडाकार भी होते हैं। देश काल, परिस्थिति और जलवायु के अनुसार आकार में परिवर्तन होना संभव है। एवोकैडो के पेड़ आंशिक रूप से स्व परागण और ग्राफ्टिंग यानि कलम के माध्यम से लगाए जाते हैं। मैक्सिको और ग्वाटेमाला इसके सबसे बड़े उत्पादक हैं। 2020 में इसका वैश्विक उत्पादन 8.01 मिलियन टन था और मैक्सिको ने एवोकैडो की इस वैश्विक मांग की लगभग 34 प्रतिशत आपूर्ति अकेले की। चिली, कैलिफोर्निया, कोलंबिया, पेरू, केन्या और इंडोनेशिया भी इसके प्रमुख उत्पादक हैं। कैलिफोर्निया में तो इसकी 25 किस्में में उत्पादित की जाती हैं जिनमें से कुछ बहुत अधिक लोकप्रिय हैं। सामान्य तौर पर इसकी फसल अक्टूबर से मई के महीने तक होती है, पर मैक्सिको और ग्वेटामाला में साल भर इसकी खेती की जाती है। न्यूट्रीशनल वैल्यू के मामले में एवोकैडो की हास प्रजाति सबसे खास है। आमतौर पर उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पनपने वाला यह फल 19 वीं शताब्दी में से भारत लाया गया। हालांकि यह अभी भी दूसरे विदेशी फलों जैसे कीवी, ब्लूबेरी, स्ट्रोबेरी, ड्रैगन फ्रूट की तरह आमजन को दुर्लभ ही कहा जायेगा, लेकिन समय के साथ भारत में वैश्विक व्यंजनों की मांग बढ़ने से इसका उत्पादन बढ़ रहा है। कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु और महाराष्ट्र जैसे दक्षिण भारतीय राज्यों के अलावा पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, पंजाब और हरियाणा में भी इसका उत्पादन किया जाता है। इसकी खेती के लिए 30 डिग्री सेल्सियस के लगभग तापमान की जरूरत होती है। साथ ही लैटेराइट मिट्टी उपयुक्त रहती है। सिक्किम में भी आश्चर्यजनक रूप से इसका उत्पादन होता है। हालांकि ग्लोबल वार्मिंग और वनों की कटान का असर एवोकैडो की फसल पर भी प्रत्यक्ष रूप से पड़ा है।

सभी दूसरे फलों की तरह कच्चे एवोकैडो का रंग हरा होता है। पकने पर धीरे-धीरे इसका कलर भूरा या बैंगनी हो जाता है। जब यह फल हल्का-हल्का नरम हो तो खाने के लिए बिल्कुल सही रहता है। बैंगनी या भूरा होने पर इसे फ्रिज में रख देना चाहिए, क्योंकि यह बहुत तेजी के साथ पकता है और अधिक पक जाने पर काले रंग का हो जाता है। इसका मतलब है कि फल खराब हो गया। पके हुए एवोकैडो को तीन-चार दिन तक फ्रिज में स्टोर करके रखा जा सकता है। अगर फल कच्चा हो तो इसे एथिलीन गैस बनाने वाले फलों जैसे केला, नाशपाती, सेव आदि के साथ रख दिया जाए तो पकने में आसानी होती है। इसकी एक शारविल नाम की प्रजाति भी होती है, जो पकने पर भी हरी रहती है। एवोकैडो में टेनिस की बॉल के आकार की गुठली अर्थात् बीज होता है, जो काफी कठोर होता है। जोर से नीचे पटकने पर इसके बराबर दो टुकड़े हो जाते हैं। एवोकैडो के बाहर का छिलका मोटी परत के रूप में होता है, खाने से पहले जिसे हटाना होता है उसके बाद पतले-पाते टुकड़े बनाए जा सकते हैं, जो बिल्कुल मक्खन की तरह मुलायम और मक्खन का ही स्वाद देते हैं। इन्हें नमक-काली मिर्च मिलकर भी खाया जा सकता है और सादा भी, क्योंकि इसमें फैट ज्यादा होता है। इसलिए बहुत अधिक फल एक साथ नहीं खाया जा सकता, बचे हुए फल में नींबू का रस घिसकर इस पन्नी में अच्छी तरह लपेटकर अगले दिन के लिए सुरक्षित फ्रिज में रखा जा सकता है। इससे यह ऑक्सीडेशन से बचा रहेगा और काला नहीं पड़ेगा। स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं में इसके प्रयोग और उपयोगिता के बारे में कई शोध हो रहे हैं। अमेरिकी वयस्कों में कार्डियोवैस्कुलर रोगों के जोखिम पर एवोकैडो के इस्तेमाल के प्रभाव का आंकलन करने के लिए 2022 में एक अध्ययन किया। इस अध्ययन में पाया गया कि एवोकाडो का पर्याप्त सेवन करने से दिल के रोगों का जोखिम कम होता है। इसी तरह ओस्टियो आर्थराइटिस रोग में भी इसकी उपयोगिता सामने आई है। इस रोग में जॉइंट कार्टिलेज खराब हो जाती हैं और रोगी को दर्द का सामना करना पड़ता है। एंटीऑक्सीडेंट गुणों के कारण एवोकैडो ऐसे में लाभकारी है, क्योंकि इसमें सूजन कम करने वाले तत्व मौजूद हैं।

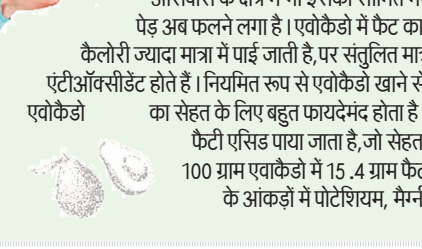

इसके एंटीऑक्सिडेंट गुणों के कारण यह प्रोस्टेट और ब्रेस्ट कैंसर से लड़ने वाला एंटी कैंसर तत्व साबित हो सकता है। यह कैंसर की कोशिकाओं को पनपने से रोकता है। त्वचा की कोमलता और मजबूती को बेहतर करने में मददगार हो सकता है। फाइबर होने के कारण पाचन शक्ति को मजबूत बनाता है। साथ ही इसका सेवन आंतों में उपयोगी बेक्टिरिया की संख्या भी बढ़ाता है। आंखों की रोशनी बढ़ाने में भी इसे सहायक माना जाता है। किसी भी तरह के मेटाबॉलिक डिसऑर्डर जैसे टाइप-2 डायबिटीज़ में भी एवोकैडो के इस्तेमाल को अध्ययन में लाभदायक बताया जाता है। इस पर अभी और अधिक शोध की जरूरत है ताकि सटीक परिणाम आएं, लेकिन इसकी उपयोगिता पर कोई संदेह नहीं।

स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद

यह विदेशी फल स्वास्थ्य के लिए काफी लाभदायक है। वर्तमान में लोग स्वास्थ्य के प्रति सचेत हो रहे हैं। अत: फलों की मांग बढ़ने से उनके दामों में भी वृद्धि हो रही है। मांग और पूर्ति में संतुलन न होने की वजह से एवोकैडो एक मंहगा फल है जिससे किसानों को अच्छी आमदनी होती है। पिछले कुछ वर्षों से देश में किसान पारंपरिक खेती को छोड़कर नई फसलों की खेती और आधुनिक खेती में दिलचस्पी ले रहे हैं जिसका सबसे बड़ा कारण पारंपरिक खेती में कमाई के आसार कम होना है। ऐसे में एवोकैडो की खेती किसानों के लिए लाभदायक है। इसके पेड़ में एक बार 100 से 500 तक फल आ सकते हैं जिसकी कीमत क्वालिटी के आधार पर कुछ सौ रुपए प्रति किलो से लेकर हजार रुपए प्रति किलो तक भी पहुंच जाती है। मैंने पहली बार विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान, अल्मोड़ा में एवोकैडो का पेड़ फलते हुए देखा था। हल्द्वानी के आसपास के क्षेत्र में भी इसका सीमित मगर सुखद उत्पादन हो रहा है। एक पारिवारिक मित्र के अनुसार दस साल पहले लगाया पेड़ अब फलने लगा है। एवोकैडो में फैट काफी ज्यादा पाया जाता है, लेकिन इसमें कोलेस्ट्रॉल का स्तर बहुत कम होता है। हालांकि कैलोरी ज्यादा मात्रा में पाई जाती है, पर संतुलित मात्रा में प्रयोग करने में कोई नुकसान नहीं है। एवोकैडो में फाइबर, विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट होते हैं। नियमित रूप से एवोकैडो खाने से पाचन तंत्र सही रहता है। विटामिन ए और ई, फाइबर और मिनरल्स के गुणों से भरपूर एवोकैडो का सेहत के लिए बहुत फायदेमंद होता है। इसका सेवन मोटापा कम करने और शुगर को कंट्रोल करने में मदद करता है। इसमें फैटी एसिड पाया जाता है, जो सेहत के लिए कई मायनों में फायदेमंद होता है। न्यूट्रीशनल वैल्यू के आंकड़ों की बात करें तो 100 ग्राम एवाकैडो में 15 .4 ग्राम फैट, 8 .64 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 6 .8 ग्राम फाइबर, 1 .96 ग्राम प्रोटीन के अलावा मिलीग्राम के आंकड़ों में पोटेशियम, मैग्नीशियम, जिंक, कैल्शियम, आयरन, कॉपर विटामिन ई और सी जैसे तत्व पाए जाते हैं।

दुनिया के सात अजूबों में पहला गीजा का मशहूर पिरामिड

दुनिया के शुरुआती सात अजूबों में गीजा के मशहूर पिरामिडों में पहला फैरो नेफ्रू के बेटे खुफु ने (चतुर्थ राजवंश) 2570 ईसा पूर्व में विश्व प्रसिद्ध अपने टॉम्ब टूम मकबरे के रूप में पिरामिड ऑफ खुफु बनवाया। यही द ग्रेट पिरामिड ऑफ गीजा है। शुरुआती दौर में यह इजिप्ट का सबसे ऊंचा पिरामिड 146 .6 मीटर (481 फीट) था। यह करीब 3800 वर्षों तक मानव निर्मित सबसे ऊंचा निर्माण था। आज यह कम हो गया है। एफिल टावर बनने के बाद 19 वीं सदी में इसकी ऊंचाई का कीर्तिमान टूटा। यह करीब 25 लाख चूना पत्थरों के खंडों से निर्मित है जिनमें से हर एक का वजन 2 से 30 टनों के बीच है। ग्रेट पिरामिड को इतनी परिशुद्धता से बनाया गया है कि वर्तमान तकनीक ऐसी कृति को दोहरा नहीं पा रही है। इसे बनाने में करीब 23 साल लगे।

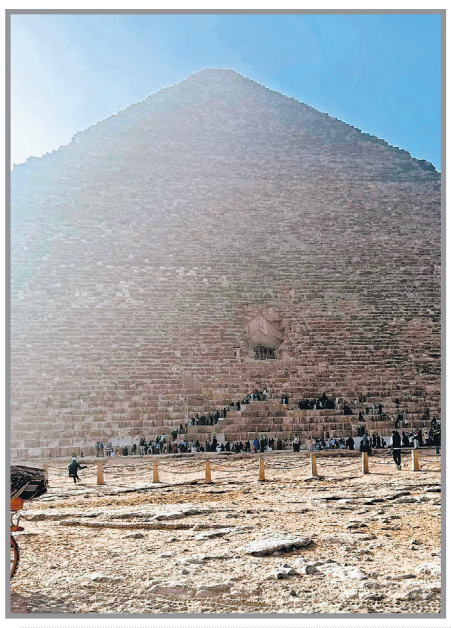

2520 ईसा पूर्व में खुफु के बेटे खफरे ने पिरामिड ऑफ खफरे बनवाया। ऑप्टिकल भ्रम के माध्यम से इसे बड़ा दिखने के लिए इसे बेड रॉक फाउंडेशन पर निर्माण कराया और इसमें मरचरी परिसर की डिटेलिंग पर बहुत ध्यान दिया गया। इसकी एक और विशेषता इस पिरामिड के पास बने गीजा का महान स्फिंक्स हैं, जो आज भी कौतूहल का विषय बना हुआ है। लाइम स्टोन से बना यह अद्भुत स्टेच्यू का शरीर शेर का और सिर मानव का है। फैरो खफरे को सूर्य देवता के प्रतिनिधि के रूप में देखा जाता है। इजिप्ट संस्कृति में स्फिंक्स (कल्पित जीव), राजसी गौरव और पवित्रता, पूजनीयता का प्रतीक है। कुछ का मानना है कि यह मिस्र के सूर्य देवता का प्रतीक है, पर इतना तो साफ है कि यह दुनिया का सबसे पुराना जाना पहचाना जाने वाला रहस्यमय स्टेच्यू है।

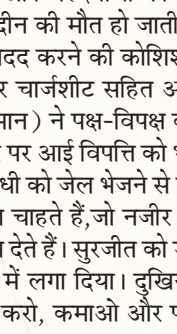

शैलेन्द्र प्रताप सिंह
से .नि., पुलिस महानिरीक्षक

महान पिरामिड को लेकर अक्सर सवाल उठाए जाते रहे हैं कि बिना मशीनों और आधुनिक औजारों के मिस्रवासियों ने कैसे विशाल पाषाण खंडों को 450 फीट ऊंचे पहुंचाया और इस बृहत परियोजना को महज 23 वर्षों में पूरा किया? पिरामिड मर्मज्ञ इवान हैडिंगटन ने गणना कर हिसाब लगाया कि यदि ऐसा हुआ तो इसके लिए दर्जनों श्रमिकों को साल के 365 दिनों में हर दिन 10 घंटे के काम के दौरान हर दूसरे मिनट में एक प्रस्तर खंड को रखना होगा। क्या ऐसा संभव था? विशाल श्रमशक्ति के अलावा क्या प्राचीन मिस्रवासियों को सूक्ष्म गणितीय और खगोलीय ज्ञान रहा होगा? विशेषज्ञों के मुताबिक पिरामिड के बाहर पाषाण खंडों को बहुत ही कुशलता से तराशा और फिट किया गया है। मिस्र के पिरामिडों के निर्माण में कई खगोलीय आधार भी पाए गए हैं, जैसे कि तीनों पिरामिड ओरियन राशि के तीन तारों की सीध में हैं। वर्षों से वैज्ञानिक इन पिरामिडों का रहस्य जानने के प्रयत्नों में लगे हैं।

2490 में प्रसिद्ध मेनक्योर के पिरामिड का निर्माण चौथे राजवंश के फैरो मेनकैरो द्वारा कराया गया था। यह तीनों में सबसे छोटा है। इस पिरामिड की एक रोचक कहानी यह है कि 12 वीं सदी में सुल्तान अल मलेक अल अजीज ने इन पिरामिडों को ध्वस्त करने की ठानी, सबसे छोटा होने के कारण इसे ही बहुत से मजदूरों ने करीब आठ महीने तक तोड़ने का प्रयास किया। बहुत ही धन व्यय हुआ, पर जब बड़ी मसक्कत के बाद एक पत्थर हटता था तो दूसरा उसकी जगह ले लेता था और पत्थरों को अपनी जगह से हटाने का कोई साधन भी नहीं था। परिणामतः इसकी केवल इसकी पश्चिमी फेज पर कुछ दरार ही बना पाए और सुल्तान को आठ महीने तक पैसा पानी की तरह बहाने के बाद कोशिश खत्म करनी पड़ी, लेकिन जब 12 वीं सदी में इसे तोड़ा नहीं जा सका तो उसे बनाया कैसे और क्यों बनाया गया होगा? कैसे और कहां से पत्थर लाए और इतनी ऊंचाई तक चढ़ाए गए होगे। इस संबंध में विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। कुछ का कहना है कि भौतिक विज्ञान और गणित कि सहारा लेते हुए स्लोप्स, रैंप की मदद से बनने की बात करते हैं तो कुछ इसमें एलियंस की बात करते है। इतिहासकार और वास्तुकार बताते हैं कि इन्हें फैरो को दफन करने के लिए बनवाया गया था और इस तरह बनवाया गया था कि सूर्य देवता के बहुत नजदीक पहुंच जाए और उनसे ताकत लें।

पिरामिड की मदद से मृत फैरो की आत्मा ईश्वर (एबॉड ऑफ गॉड) से जा मिलेगी।

इजिप्टियन लोगों को यह विश्वास है कि आत्मा को मृत्यु के बाद लंबा सफर करना होता है और इसी कारण फैरो के साथ तमाम उपयोगी और कीमती सामान भी उनके साथ दफन करते समय रखा जाता था ताकि वे फैरो की आगे की आध्यात्मिक यात्रा में काम आ सके। पिरामिड के उच्च शिखर पर सूर्य की पहली किरण पड़ती है और इस तरह इस पिरामिड को आध्यात्मिक दुनिया का प्रवेश मार्ग बना देती है। यही कारण है कि इन पिरामिड के औपचारिक नाम सूर्य से जुड़े हैं। सारे इजिप्ट के पिरामिड नील नदी के पश्चिमी किनारे पर बने है। धार्मिक मान्यताओं और घन के अनोखे मेल ने ही पिरामिड जैसा अनूठा उपहार दुनिया को दिया, जिन्होंने फैरो की आध्यात्मिक यात्रा में न केवल उनकी मदद की वरन उन्हें इतिहास के पन्नों में अमर बना दिया। दुनिया आज उन्हें इन पिरामिड की वजह से जानती है। मिस्र के अलावा सूडान, मैक्सिको, चीन आदि देशों में भी पिरामिड मिलते हैं।

महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या इजिप्ट ने इन मशहूर पिरामिडों को बनाया या इन पिरामिडों ने इजिप्ट को बनाया। इनके माध्यम से इजिप्ट की संस्कृति, दर्शन और उच्च स्तरीय वास्तुकला की दुनियाभर में मान्यता है। इनकी दीवारों पर उकेरे गए चित्रों से आज भी इजिप्ट की संस्कृति जिंदा है।

साप्ताहिक राशिफल

-पं .मनोज कुमार द्विवेदी
ज्योतिषाचार्य, कानपुर

मेष
यह सप्ताह प्रारंभ से ही आपको अपने कार्यों में मनचाही सफलता मिलती हुई नजर आएगी। अधिकारी वर्ग के साथ आपकी निकटता बढ़ेगी। नौकरीपेशा लोगों को कार्यक्षेत्र में अनुकूलता बनी रहेगी तो वहीं व्यवसाय से जुड़े लोग अपने कामकाज का विस्तार करने की योजना बनाएंगे।

वृष
इस सप्ताह आपके सुख, संपत्ति और यश में वृद्धि होगी। कार्यक्षेत्र में आपको कार्य विशेष के लिए सम्मानित किया जा सकता है। नौकरीपेशा लोगों की मनचाहे स्थान पर तबादले की मनोकामना पूरी होगी। पद में वृद्धि के पूरे योग बन रहे हैं तो वहीं बिजनेस करने वाले लोग किसी बड़े व्यावसायिक अनुबंध को कर सकते हैं।

मिथुन
इस सप्ताह किसी भी काम को जल्दबाजी में करने से बचना चाहिए अन्यथा आर्थिक और शारीरिक कष्ट मिल सकता है। नौकरीपेशा लोगों को अपने कार्यक्षेत्र में अपना कार्य किसी दूसरे के भरोसे छोड़ने अथवा उसमें लापरवाही बरतने से बचना चाहिए अन्यथा आप अपने उच्चाधिकारियों के गुस्से का शिकार हो सकते हैं।

कर्क
इस सप्ताह यदि आप बेरोजगार हैं और इन दिनों नौकरी के लिए प्रयासरत हैं तो आपको इसे पाने के लिए थोड़ा और इंतजार करना पड़ सकता है। वहीं पहले से कार्यरत लोगों को कार्यक्षेत्र में कुछ परेशानी से जूझना पड़ सकता है। अपनी भावनाओं और क्रोध पर नियंत्रण रखते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति पर फोकस करना होगा, तभी मनचाही सफलता प्राप्ति के योग बनेंगे।

सिंह
यह सप्ताह थोड़ा परेशानियां और चिंता लिए रह सकता है। नौकरीपेशा लोगों के सिर पर अचानक से कामकाज का अतिरिक्त बोझ आ सकता है। इस दौरान आपको छोटे से छोटे से काम को करने में अतिरिक्त समय लग सकता है। कामकाज के सिलसिले में आपको अधिक भागदौड़ करनी पड़ सकती है।

कन्या
इस सप्ताह अपने सोचे हुए कार्य को समय से पूरा करने में कामयाब होंगे। साथी-संगी और परिजन आपके साथ कदम से कदम मिलाकर चलेंगे और लक्ष्य विशेष की प्राप्ति सहायक बनेंगे। किसी मांगलिक अथवा धार्मिक कार्य में सहभागिता के योग बनेंगे। इस दौरान अचानक से किसी तीर्थ विशेष की यात्रा भी संभव है।

तुला
यह सप्ताह प्रारंभ में ही आपको कोई बड़ी मनोकामना पूरी हो सकती है। इस दौरान आपको अपने करियर और कारोबार से जुड़ा सुखद समाचार प्राप्त होगा। नौकरीपेशा लोगों की मनचाही जगह पर तबादले अथवा पदोन्नति की कामना पूरी हो सकती है।

वृश्चिक
इस सप्ताह आलस्य और अभिमान से बचते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति पर फोकस रखते हैं तो उन्हें मनचाही सफलता मिल सकती है। यदि आप किसी अचल संपत्ति को खरीदने या बेचने की योजना बना रहे हैं तो आपको इससे जुड़ी किसी भी डील को करने से पहले अपने शुभचिंतकों की राय अवश्य लेनी चाहिए।

धनु
इस सप्ताह आपके सोचे हुए कार्य थोड़े देरी से पूरे होंगे और उसमें आपको तमाम तरह की अड़चन आ सकती है। कामकाज में मिलने वाली सफलता में देरी और उसमें धीमी गति के कारण आपका मन थोड़ा खिन्न रह सकता है। परीक्षा-प्रतियोगिता की तैयारी में जुटे छात्रों का मन पढ़ाई से उचट सकता है।

मकर
यह सप्ताह शुभता और लाभ को लिए हुए है। प्रारंभ में घर-परिवार के किसी प्रिय सदस्य की सफलता से आपके मान-सम्मान और सुख में वृद्धि होगी। घर में धार्मिक औरमांगलिक कार्य संपन्न होंगे। सत्ता-सरकार से जुड़े किसी प्रभावी व्यक्ति की मदद से कोई बड़ा काम पूरा होगा।

कुंभ
इस सप्ताह किसी भी कार्य में शार्टकट लेने और नियम-कानून को तोड़ने से बचना चाहिए अन्यथा उन्हें आर्थिक नुकसान झेलने के साथ शारीरिक एवं मानसिक कष्ट भी झेलना पड़ सकता है। इस दौरान आपको घर और बाहर अपने प्रियजनों का सहयोग और समर्थन कम मिल पाएगा।

मीन
यह सप्ताह शुभ साबित होगा। कार्यक्षेत्र में आप पर सीनियर और जूनियर दोनों मेहरबान रहेंगे। सप्ताह के प्रारंभ में आपको कोई अहम जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है जिससे आपका मान-सम्मान बढ़ेगा। कारोबार में बड़े आर्थिक लाभ के योग बनेंगे। व्यावसायिक यात्रा सफल रहेगी।

वर्ग पहेली (काकुरो)

काकुरो पहेली वर्ग पहेली के समान हैं, लेकिन अक्षरों के बजाय बोर्ड अंकों (1 से 9 तक) से भरा है। निर्दिष्ट संख्याओं के योग के लिए बोर्ड के वर्गों को इन अंकों से भरना होगा। आपको दी गई राशि प्राप्त करने के लिए एक ही अंक का एक से अधिक बार उपयोग करने की अनुमति नहीं है। प्रत्येक काकुरो पहेली का एक अनूठा समाधान है।

काकुरो 68

काकुरो 67 का हल

	37	17		39	11	36		
3	1	2	8	5	2	1		
8	5	3	17	6	9	2	3	
10	3	1	2	4	4	3	1	
29	6	5	3	8	19	4	2	
36	3	7	6	4	9	2	5	
3	1	2	29	5	7	9	8	
	7	4	2	1	9	3	6	
	23	9	8	6	11	4	7	

खाना खजाना

उपमा प्रीमिक्स

घर का बना उपमा प्रीमिक्स पौष्टिक, स्वादिष्ट और बनाने में बहुत ही आसान लोकप्रिय व्यंजन है। यदि आपको भी सुबह की व्यस्तता के बीच में नाश्ता बनाना होता है तो आपके लिए भी ये प्रीमिक्स बहुत उपयोगी है। यह फटाफट बन जाता है और घर का बना है तो पौष्टिक तो होगा ही।

सामग्री
- 500 ग्राम सूजी/रवा
- 100 ग्राम मूंगफली
- 2 टेबल स्पून उड़द दाल
- 2 टेबल स्पून चना दाल
- 15-20 कड़ी पत्ता
- 9-10 कटी हुई हरी मिर्च
- 2 टी स्पून राई
- 2 टेबल स्पून देसी घी
- नमक स्वादानुसार

सनाज स्वाद
फूड ब्लॉगर

बनाने की विधि सबसे पहले आप एक कढ़ाई में सूजी को सिम फ्लेम पर 10-15 मिनट सूखा ही भून लें। अब सूजी को अलग बर्तन में निकाल लें और कढ़ाई में घी गरम कर, राई कढ़ी पत्ता, हटी मिर्च को डाले और अच्छे से फ्राई होने दें। मूंगफली, चना और उड़द दाल डालें और 10 मिनट भुनें फिर इसमें सूजी मिला दें। इसके बाद 5 मिनट और भुने, गैस फ्लेम बंदकर दें और इसे ठंडा होने दें। नमक मिलाकर एयर टाइट कंटेनर में स्टोर कर लें। फ्रीज से बाहर एक महीने तक और फ्रीज में रख के 2-3 महीने तक स्टोर कर सकते हैं। उपमा बनाने के लिए कढ़ाई में तेल गरम करें, अपने पसंद की सब्जी फ्राई करें और एक कप उपमा मिक्स मिलाएं तीन कप पानी मिलाएं और ढककर 10-15 मिनट तक पकाएं। हरा धनियां, नीबू का रस मिलाएं। अब आपका उपमा तैयार है। आप बिना सब्जी के भी सादा उपमा बना सकते हैं।

दुश्मन जो दोस्तों से प्यारा है

1972 में एक फिल्म रिलीज हुई थी, दुश्मन। सुरजीत (राजेश खन्ना) नाम का एक मस्तमौला ड्राइवर है। एक दिन उसकी नशे और जल्दबाजी की ड्राइविंग के कारण एक किसान रामदीन की मौत हो जाती है, लेकिन सुरजीत भागता नहीं है। मदद करने की कोशिश करता है। पुलिस उसे गिरफ्तार कर चार्जशीट सहित अदालत में पेश करती है। जज साहब (रहमान) ने पक्ष-विपक्ष को सुना और मृत किसान के पीड़ित परिवार पर आई विपत्ति को भी दृष्टिगत किया। उनकी सोच है कि अपराधी को जेल भेजने से इंसाफ नहीं होगा। वो एक ऐसा प्रयोग करना चाहते हैं, जो नजीर बने। वो एक विचित्र एवं ऐतिहासिक निर्णय देते हैं। सुरजीत को उस पीड़ित परिवार की सेवा में लगा दिया। दुखिया परिवार के खेतों में काम करो, कमाओ और परिवार का भरण पोषण करो।

परिवार में दिवंगत रामदीन के वृद्ध पिता गंगादीन (नाना पलिसकर), उसकी वृद्धा अंधी मां (लीला मिश्रा), पत्नी मालती (मीना कुमारी), बहन कमला (नाज) और दो बच्चे हैं। सुरजीत को इस अजीब फैसले पर ऐतराज है। वो जज साहब से बार-बार गुजारिश करता है कि वो फैसला बदलें, लेकिन जज साहब अटल रहे।

वीर विनोद छाबड़ा
वरिष्ठ लेखक, लखनऊ

सुरजीत पीड़ित के गांव पहुंचता है। वहां उसका गालियों से स्वागत होता है। उस पर पत्थर भी फेंके जाते हैं। पीड़ित परिवार उसे घर में नहीं घुसने देता। सुरजीत भागने की कोशिश करता है, लेकिन पुलिस उसे पकड़कर फिर उसी गांव में वापस छोड़ आती है। उस परिवार को भी समझाया जाता है, आपकी मदद करेगा। सुरजीत उसी गांव की बाइस्कोप दिखाने वाली फूलमती (मुमताज) से प्यार करने लगता है। दोनों पीड़ित परिवार का दिल जीतते हैं। सुरजीत उस परिवार पर गंदी नजर रखने वाले टिंबर मालिक (अनवर हुसैन) से उनकी रक्षा करता है। दो साल गुजर जाते हैं। सुरजीत की सजा खत्म होती है, लेकिन न तो पीड़ित परिवार सुरजीत को छोड़ना चाहता है और न ही सुरजीत। सुरजीत प्रार्थना करता है, उसे पीड़ित परिवार के साथ रहने के लिए ताउम्र की सजा दी जाए।

जज साहब प्रयोग कामयाब रहा। सजा ऐसी होनी चाहिए कि अपराधी को सुधरने का मौका मिले और पीड़ित पक्ष के जख्म पर मरहम भी लगे। प्रोड्यूसर प्रेम जी की इस फिल्म को 'चांद और सूरज', मेरे हमसफर और 'धरती कहे पुकार के' वाले दुलाल गुहा ने निर्देशित किया था। उन्होंने बाद में दोस्त, प्रतिज्ञा, खान दोस्त, दो अंजाने, दिल का हीरा, धुआं, दो दिशाएं जैसी कामयाब फिल्में भी डायरेक्ट की। समाज में इस फिल्म स्वागत हुआ। इसका प्रमाण इसकी जबरदस्त कामयाबी है, लेकिन इसे कोई बड़ा पुरस्कार नहीं मिला। दरअसल ईनाम देकर इस यूटोपियन विचार का कोई पक्षधर बनना नहीं चाहता था। हमारा समाज ऐसे विचारों का पर्दे पर भले ही स्वागत करता हो, लेकिन धरती पर लाइव उसे मंजूर नहीं। आज भी कमोबेश यही स्थिति है। हालांकि 'हिंदू' अखबार ने इसकी जमकर तारीफ की थी। 'दुश्मन' बाद में तमिल, तेलगु और कन्नड़ में भी बनी और कामयाब भी रहीं।

आनंद बक्शी के गीत और लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल का संगीत इस फिल्म का मजबूत पक्ष थे, लेकिन इसके बावजूद इसमें में कुल चार गाने थे। कॉमेडी के लिए बेवजह की उपकथा भी नहीं डाली गई ताकि फिल्म अपने उद्देश्य से भटके नहीं।

औरंगजेब आलमगीर : जिंदापीर या जिंदा दैत्य

औरंगजेब भारतीय इतिहास के सबसे विवादास्पद व्यक्तियों में एक है। कुछ की नजर में वो पीर है,जबकि कुछ की नजरों में जिंदा दैत्य। उसका पूरा नाम अबुल मुजफ्फर मुहिउद्दीन मोहम्मद औरंगजेब आलमगीर पादशाह गाजी था। शाहजहां के शासनकाल के अंतिम दिनों में वो दक्षिण भारत के सूबेदार के रूप में तैनात था और दक्षिण भारत में उसके द्वारा भूमि सुधार के अनन्य कार्यक्रम भी शुरू किए गए थे। उसके भाइयों में मुराद और शुजा क्रमशः गुजरात और बंगाल के सूबेदार थे, जबकि दारा शिकोह समराज्य के वली अहद के रूप में आगरा में ही था। सितंबर 1657 में बादशाह के बीमार होने की खबरों से सभी शहजादे सिंहासन पाने के लिए आतुर हो उठे।

शाहजहां ने सभी को पत्र लिखकर अपने तंदुरुस्त होने की खबर दी,किंतु सबको भय था कि कहीं दारा का षड्यंत्र न हो। दूसरी ओर शाहजहां और दारा को इन शहजादों की नियत की सही न होने का अंदेशा था जिसके कारण मुगल परिवार में उत्तराधिकार का युद्ध सामने आकर खड़ा हो गया और भाई-भाई के रक्त का पिपासु बन गया। औरंगजेब ने मुराद से समझौता किया कि अगर उनकी संयुक्त सेना युद्ध जीतती है तो भारत के एक तिहाई हिस्से पर मुराद की हुकूमत मानी जाएगी,किंतु एक रात आलमगीर द्वारा मुराद के कैंप में शराब और शबाब का आयोजन कर उसके हथियार और सैनिक बेहोश कर उसे गिरफ्तार कर लिया गया।

डॉ .विकास खुराना
शाहजहांपुर

मुराद की सेना का विलय आलमगीर की सेना में हो गया। 15 अप्रैल 1658 को हुए धरमत तथा 29 मई 1658 को हुए सामुगढ़ के युद्ध में दारा की सेनाएं हार गईं और वो युद्धभूमि से निकल गया। शाहजहां को कैदकर आलमगीर सिंहासन पर जा बैठा। उसकी पहली चुनौती बादशाह का जिंदा रहना तथा दारा की हिंदुस्तान में उपस्थिति थी, वह जानता था कि उदार छवि के कारण दारा जनता में ज्यादा लोकप्रिय है। उसे अपने आपको इन दोनों से ही श्रेष्ठ सिद्ध करना था। 1661 तथा 1662 में उसने साम्राज्य की सभी दिशाओं में अभियान किए,किंतु विफल रहे। ऐसे में नाकामी से बचने के लिए उसने वही किया,जो ज्यादातर बादशाह करते हैं,वह यकायक धर्म की ओर दौड़ पड़ा। उसने अपने आपको मुसलमानो का जिंदापीर और दारा को दुश्मन ए दीन ए मुंबयियान कहा। फिर एक रोज उसके अहोभाग्य और मालिक जीवन की गद्दारी से दारा को गिरफ्तार कर आगरा लाया गया, उसे गंदे कपड़े पहनाकर शहर में जब घुमाया गया तो जनता की सहानभूति जाग उठी जिससे घबराकर उसने दारा की तुरंत हत्या करवा दी। इस्लाम उसका अगला अवलंबन था। बादशाह ने इस्लामी तरीके से अपना जीवन और दरबारी रस्मों को ढाल लिया,अनेक गैर इस्लामी कर हटा दिए गए और उनकी भरपाई के लिए जजिया हिंदुओं पर पुनः लगा गया।

बादशाह ने अकबर की नीतियों को पलट दिया जिसमें राजपूतों तथा अन्य क्षेत्रीय इकाइयों के संप्रभुता के अधिकार को माना गया था। उसने पूरे भारत पर एकछत्र राज्य कायम करने का मंसूबा बांधा,यही से उसका दुर्भाग्य शुरू हो गया। 1678 में राजा जसवंत सिंह की मृत्यु के बाद पूरे जोधपुर को मुगलों ने अपने अधीन कर लिया जिसके बाद दुर्गदास राठौर की अगुवाई में कभी न खत्म होने वाला युद्ध शुरू हो गया, यही स्थिति जयपुर रियासत के साथ हुई। देखते ही देखते सिख, मराठा, जाट,मेवात जैसे अनेक क्षेत्र अब बादशाह के खिलाफ उठ खड़े हुए। यद्यपि यह सही है कि औरंगजेब के यह सभी कृत्य राजनैतिक थे,किंतु कैंब्रिज इतिहासकारों और उनका अनुसरण करने वाले भारत के प्रारंभिक इतिहास लेखकों ने इसमें धर्म का पुट देखा। हाल के दशकों में हुए अनुसंधान के बाद यह सभी दावे ताश के पत्तों की मानिंद गिर गए।

अतहर अली द्वारा लिखी गई पुस्तक "नोबिलिटी अंडर औरंगजेब" बताती है कि बादशाह आलमगीर के अधीन सेना में हिंदू 31.6 प्रतिशत थे,जो किसी भी मुगलिया बादशाह के समय से सबसे ज्यादा थे। राजा जसवंत सिंह, राजा जयसिंह जैसे हिंदू सेना के सर्वोच्च पदों पर आसीन थे। जोधपुर से लड़ाई के समय ज्यादातर राजपूत राजे जिनमें हाड़ी, कच्छवाहा इत्यादि शामिल थे मुगल कैंप का हिस्सा थे। जजिया की वसूली के लिए कोई विशेष उत्पीड़क अभियान कभी नहीं छेड़े गए। इन सबके मध्य मुगल साम्राज्य के पतन की तीव्र शुरुआत हो गई और यह औरंगजेब के जिंदा रहते ही शुरू हुआ, इसके मूल में दक्षिण की जमीन को कब्जाने की कोशिश उससे उपजा जागीरदारी और बे-जागिरी का संकट था। संक्षेप में यह समझना उचित है कि धर्म का अवलंबन और उसके प्रत्यारोप इतिहास को सरल बनाते है,जबकि इसका सत्य कहीं अधिक जटिलता से हासिल होता है जिसके तत्व आर्थिक और सांस्कृतिक पतन पर आधारित होते है। इतिहास के वास्तविक सत्य गंभीर और कठिनाई से हासिल किए जाते हैं,धर्म के आरोप केवल उन जटिल अध्ययनों से बचने का एक तरीका मात्र है। औरंगजेब न ही मुसलमानों के लिए जिंदापीर था और न ही दैत्य। वह एक बादशाह था जिसका कार्य राजनैतिक उद्देश्यों को प्राप्त करना था,धर्म उसका उपक्रम मात्र था।

इतिहास के झरोखे से

पंचाल राज्य का गौरवशाली इतिहास

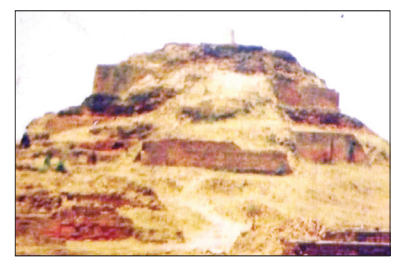

प्रो . गिरिराज नन्दन
इतिहासकार, आंवला, बरेली

महाभारत युद्ध के बाद पंचाल

महाभात-युद्ध के अनंतर उत्तर पंचाल तथा अहिच्छत्रा के संबंध में विशेष पता नहीं चलता। पांडवों ने अपने समय में इस प्रदेश को अपने अधीन रखा। उनके स्वर्गारोहण के बाद अर्जुन के नाती परीक्षित का आधिपत्य रहा। परीक्षित के अंतिम दिनों में उत्तर पश्चिम में नागजाति का प्राबल्य हुआ। इस जाति के नेता तक्षक के द्वारा परीक्षित की मृत्यु हुई। कुरु-पंचाल जनपद पर नागों का प्रभुत्व क्षणिक ही रहा,क्योंकि परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने शीघ्र ही अपनी शक्ति संभाल कर नागों को परास्त किया और उनकी एक बड़ी संख्या को नष्ट कर दिया।

संभवतः परीक्षित या जनमेजय के बाद पंचाल पर वहां के राजवंश का पुनः अधिकार हो गया और वह नंदवंशी महापद्मनंद के समय तक रहा। पुराणों में महाभारत युद्ध से लेकर महापद्मनंद तथा पंचाल के सताईस राजाओं का उल्लेख मिलता है,पर उनके नामों और कार्यों आदि के संबंध में पुराणों से जानकारी नहीं मिलती।

अहिच्छत्र पर छेदि राजकुमार का अधिकार

इतिहासकार विमल चरणला के अनुसार जातक कथा में वर्णन है कि छेदि राज्य का राजकुमार उत्तर में अपने राज्य के लोगों के साथ गया। उसने वहाँ के अहीर राजा को परास्त करके अपना वंश स्थापित किया। सम्भवतः उसके भी बाद अहिच्छत्र में अन्य वंशों का राज्य रहा हो।

चूलनी ब्रह्मदत्त पंचाल का चक्रवर्ती राजा

जैन विविध तीर्थकल्प में महाभारत युद्ध के बाद पंचाल के हरिषेण नामक शासक का जिक्र है और उसे पंचाल का दसवाँ चक्रवर्ती राजा लिखा है। इसी ग्रंथ में ब्रह्मदत्त नामक एक दूसरे सार्वभौम राजा का उल्लेख है। महाउम्मग्ग जातक में उत्तर पंचाल के एक राजा का नाम चूलनी ब्रह्मदत्त दिया है। इस राजा के लिए कहा गया है कि उसने नगभग सारे जंम्बूद्वीप में अपना प्रभुत्व कायम किया। रामायण में पंचाल के ब्रह्मदत्त राजा की चर्चा मिलती है। अन्य उल्लेखों से ज्ञात होता है कि सम्भवतः ब्रह्मदत्त पंचाल का एक प्रसिद्ध राजा हुआ, जिसके वंश में अन्य कई शासक हुए। संभवतः उसके वैदिक धर्मानुयायी होने के कारण बौद्ध साहित्य में कहीं-कहीं बहादत्त को बुरा शासक लिखा है।

महाभारत में 16 महाजनपद (बड़े राज्यों) में पंचाल का स्थान

सोलह महाजनपद-बौद्ध तथा जैन साहित्य से पता चलता है कि बुद्ध के पहले भारत में सोलह बड़े राज्य थे जो सोलह महाजनपद' कहे गये हैं। ये महाजनपद इस प्रकार थे-मगध, अंग, काशी, कोशल, बज्जि, मल्ल, वत्स, चेदि, कुरु, पंचाल, शूरसेन, मत्स्य, अवन्ति, अस्मक, गांधार और कम्बोज। इनमें पंचाल जनपद के दो भाग बताये गये हैं-उत्तर और दक्षिण। उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्रा तथा दक्षिण की कांपिल्य लिखी है।

तेईसवें जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ को तपोभूमि अहिच्छत्र में केवल ज्ञान प्राप्त

इस समय के आस पास उत्तरी भारत में नाग वंश का उत्थान हुआ तथा 9वीं तथा 8वीं शताब्दी ई .पू . में यहाँ नागों का राज्य था। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार 23 वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने अहिच्छत्र में भ्रमण किया। यहां निकटवर्ती में महावन में घोर तप किया। संवर देव ज्योतिषी ने उन पर घोर उपसर्ग किया तब नाग राजा धरणेन्द्र ने अपनी पत्नी सहित उनकी रक्षा की तथा उनके ऊपर फणों का छत्र बनाया। पार्श्वनाथ को यहाँ केवल ज्ञान तथा जिनेन्द्र पद प्राप्त हुआ। विविध तीर्थकल्प के अनुसार अहि द्वारा छत्र बनने के कारण यह नगर अहिच्छत्र प्रसिद्ध हुआ।

यवनों का आक्रमण

गार्गी संहिता में यवनों द्वारा साकेत और मधुरा पर आक्रमण करने के प्रसंग में पंचाल पर भी उनके आक्रमण का उल्लेख मिलता है। यह आक्रमण शुंगकालीन उपरोक्त राजाओ में किसके शासन-काल में हुआ, यह ज्ञात नहीं है।

मित्र वंश के शासक 50 ई . पूर्व से 250 ई . पूर्व तक

'गुप्त' तथा 'सेन' नाम वाले राजाओं के पश्चात् मित्रवंशी राजाओं के नाम मिलते हैं। अब तक निम्नलिखित मित्र राजाओं के सिक्के पंचाल जनपद से प्राप्त हुए है- अग्निमित्र, अणुमित्र, प्रजापतिमित्र, आर्यमित्र, इन्द्रमित्र, जयमित्र, ध्रुवमित्र,फाल्गुनमित्र, भानुमित्र, भूमिमित्र, वरुणमित्र, वृहस्पतिमित्र, तथा सूर्यमित्र। इन शासकों के केवल तांबे के सिक्के मिले हैं। इनमें अग्निमित्र तथा भानुमित्र के सिक्के अपेक्षाकृत अधिक मिलते हैं। सिक्कों के आधार पर मित्र शासकों के क्रम का ठीक पता चलाना कठिन है। सभी राजाओं के सिक्कों की बनावट तथा उन पर की ब्राह्मी लिपि प्रायः एक जैसी है। इन पर सामने की ओर पंचाल जनपद के तीन चिह्न और उनके नीचे ब्राह्मी में राजा का नाम लिखा हुआ मिलता है। ये सभी सिक्के गोल आकार वाले हैं। मित्र वंशी राजाओं के सिक्के अहिच्छत्रा के अतिरक्त आंवला, बदायूं तथा रुहेलखंड के अन्य कई स्थानों में मिलते हैं। इन सिक्कों के आधार पर उक्त राजाओं के राज्य-काल का पता लगाना आसान नहीं है। अनुमानतः यदि एक शासक का राज्यकाल 15 वर्ष लगाया जाए तो मित्र वंशी उक्त राजाओं का कुल राज्य लगभग 200 वर्ष आता है। जहां तक उनके राज्य विस्तार का प्रश्न है, ऐसा प्रतीत होता है कि प्रायः उनका शासन उत्तर पंचाल तक ही सीमित रहा। गंगा के दक्षिण में पंचाल सिक्के बहुत कम मिले हैं।

खजाइनुल फुतूह की रचना और अमीर खुसरो

"खजाइनुल फुतूह" की रचना में अमीर खुसरो कुछ सीमाओं में रहने को मजबूर थे,यहां तक कि मलिक काफ़ूर की प्रशंसा करने पर भी विवश होना पड़ा था,लेकिन बाद में कुछ हालात ऐसे बदले कि मलिक काफ़ूर के विरुद्ध कलम के इस्तेमाल का अवसर मिल गया। "दिवल रानी ख़िज्र ख़ां" में ख़ुसरो ने गुजरात के राजा कर्ण द्वितीय की पुत्री देवलदी और अलाउद्दीन के ज्येष्ठ पुत्र ख़िज्र ख़ां की प्रेम कथा लिखी है। यह एक अनूठी रचना है जिसमें सियासी और समाजी इतिहास को शायरी के शीर्षक के तौर पर चुना गया है। हिंदी शब्दों का फारसी छंदों में प्रयोग किए जाने की सीमाओं की वजह से अमीर ख़ुसरो ने देवलदी के स्थान पर दिवल रानी लिखा है। अमीर ख़ुसरो के अनुसार एक दिन शहज़ादा ख़िज्र ख़ान ने उन्हें बुलवाया और विशेष रूप से सम्मानित करने के बाद अपने प्रेम की वेदना को बयान किया जिसके बाद एक कनीज़ ने लिखी हुई कहानी लाकर दी जिसके आधार पर उन्होंने बड़ी मेहनत से "दिवल रानी ख़िज्र ख़ां" लिखी। अमीर ख़ुसरो की ख्वाहिश थी कि इसे सुल्तान अला उद्दीन के अंतिम दिनों में मुकम्मल कर लिया जाए, घटनाओं का विवरण इसकी गवाही भी देता है। यह मसनवी चार माह के अथक परिश्रम के बाद जनवरी 1316 में मुकम्मल हो भी गई थी,किंतु परिस्थितियां बदल रही थीं। अमीर ख़ुसरो ने मसनवी को रोक कर इंतजार करना उचित समझा और उन घटनाओं को भी शामिल करने का इरादा किया,जो मलिक काफ़ूर की नकारात्मक छवि को प्रतिबिंबित करते थीं। मुबारक शाह ख़िलजी की हत्या के बाद अमीर ख़ुसरो ने इसमें 319 छंद और लिखे जिनमें ख़िज्र ख़ान की हत्या के साथ मलिक काफ़ूर के दुष्कर्मों का भी विवरण शामिल है।

असग़र मेहदी
लखनऊ

इस प्रकार यह मसनवी दास्तान ए इश्क के साथ एक समाजी-तारीखी दस्तावेज भी बन गई। कई मध्ययुगीन स्रोतों के अनुसार गुजरात के वाघेला शासक राय कर्ण द्वितीय ने अपने मंत्री माधव की पत्नी का अपहरण कर लिया था और माधव के भाई की हत्या कर दी थी। बदला लेने के लिए माधव ने सुल्तान अलाउद्दीन को गुजरात पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया था जिसके बाद सुल्तान ने उलुग़ ख़ान ए मुअज्जम को भेजा। 1299 के प्रथम गुजरात अभियान में अलाउद्दीन की सेना ने वाघेला शासक राय कर्ण को पलायन पर मजबूर कर दिया था। उसकी रानियां तथा हाथी एवं ख़ज़ाना शाही सेना को प्राप्त हुआ। कर्ण की रानी कमलादी बड़ी रूपवान थीं। उलुग़ ख़ान ने समस्त धन से कमलादी को भी सुल्तान के सामने पेश किया। सुल्तान ने उसे अपनी रानी बना लिया। कविता के कथानक के अनुसार एक रात कमलादी ने सुल्तान को खुश देखकर कहा कि उसका अपनी जीवित बेटी दिवलदी के लिए उसका दिल बहुत व्याकुल है, अगर बादशाह की इनायत हो जाए तो बेटी को मां से मिलाया जा सकता है। 1304 में राजा कर्ण की पूर्व पत्नी कमला देवी के अनुरोध पर गुजरात के विरुद्ध अभियान के परिणाम स्वरूप देवलदी अपनी मां के पास दिल्ली आ गई। सुल्तान अलाउद्दीन के ज्येष्ठ पुत्र ख़िज्र (ख़ज़िर) ख़ान और दिवल रानी के बीच स्नेह पैदा हो गया,जो शायद महल में पसंद नहीं किया गया। इसकी वजह यह थी कि मलिका ए जहां के भाई अलप ख़ान की पुत्री से उसकी मंगनी हो चुकी थी। जब ख़िज्र ख़ान और दिवल रानी के इश्क़ के क़िस्से मशहूर होने लगे तो दिवल रानी को क़सरे लाल भेज दिया गया। ख़िज्र ख़ान ने अपनी मां के पास एक खास ख़ादिम को भेजा जिसने कहा, "भतीजी के लिए बेटे का क़त्ल कराना मुनासिब नहीं है"। चाहने वाली मां का दिल पसीज गया, और सादगी के साथ देवल रानी के साथ ख़िज्र ख़ान का निकाह हो गया।

शहज़ादे की जिंदगी बदल गई, वह अब धार्मिक हो गया और शेख़ निज़ामउद्दीन का मुरीद भी हो गया, लेकिन किस्मत को कुछ और ही मंजूर था, सुल्तान अलाउद्दीन बीमार पड़ गया (1315), बेटे ने मन्नत मानी कि अगर सुल्तान स्वस्थ हो जाएं तो वह पैदल हतनापूर जियारत के लिए जाएगा। उधर मलिक काफ़ूर को देवगिरी से दिल्ली बुलाया गया और वह सुल्तान का नायब बन बैठा और अपने हाथ में तमाम अधिकार केंद्रित कर लिए। कुछ माह बाद सुल्तान अलाउद्दीन की तबियत में सुधार नजर आने लगा तो शहजादा अपनी मन्नत पूरी करने के लिए हतनापूर पैदल रवाना हो गया। महल में साजिशों का बाजार गर्म था। मलिक काफ़ूर ने ऐसा खेल खेला कि सुल्तान और शहज़ादे के बीच ग़लतफ़हमियां पैदा हो गई। उधर अलप ख़ान के खिलाफ यह अफवाह फैला दी गई कि सुल्तान की बीमारी दरअसल उसके द्वारा दिए गए जहर का असर है ताकि ख़िज्र ख़ान को सुल्तान बनाया जा सके।

कभी वैभवशाली नगर था पढावली

मुरैना जिले का पढावली देखने में तो एक सामान्य सा गांव लगता है,पर यहां यत्र-तत्र फैले खंडहर और पुरानी इमारतें इस बात का संकेत करती हैं कि इस गांव का संबंध जरूर किसी प्राचीन धरोहर से है। पढावली मुरैना जिले का प्रमुख गांव है,जो ग्वालियर नगर के उत्तर पश्चिम में 35 किमी दूर है। यह गांव कभी वैभवशाली नगर रहा है। इसका प्राचीन नाम धारौन था। जहां से गुप्त वंश की उत्पत्ति मानी जाती है। यह नागवंश की राजधानी कांतिपुरी (वर्तमान गांव कुतवार) तथा पाराशर गांव (वर्तमान गांव परौली) के समीप है। कहा जाता है कि पुष्यमित्र शुंग इसी नगर की कन्या पाराशरी देवी का पुत्र था। महाकवि कालिदास द्वारा रचित मालविकाग्निमित्र,अग्निमित्र की पट्टमहिषी धारिणी देवी की जानकारी देता है,जो इस नगर की दुहिता ज्ञात होती है। इस धारण नगर में कोई गुप्त परिवार रहता था। जब पुष्यमित्र शुंग ने अश्वमेघ यज्ञ किया था तब इस नगर से कोई विष्णु गुप्त विदिशा पधारे थे। इतिहासकार कनिंघम ने पढावली के गुप्तकालीन अवशेषों को देखकर अनुमान किया था कि गुप्तों के राज्यकाल में यह नगर धारौन के नाम से जाना जाता था।

रूपेश उपाध्याय
अपर-कलेक्टर, दतिया

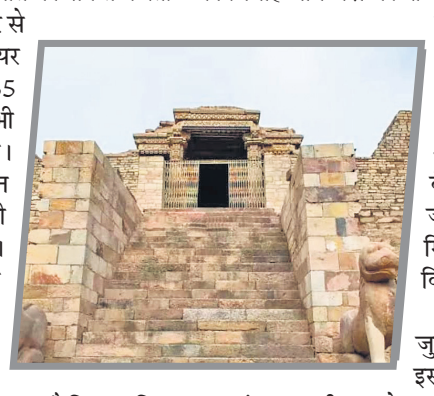

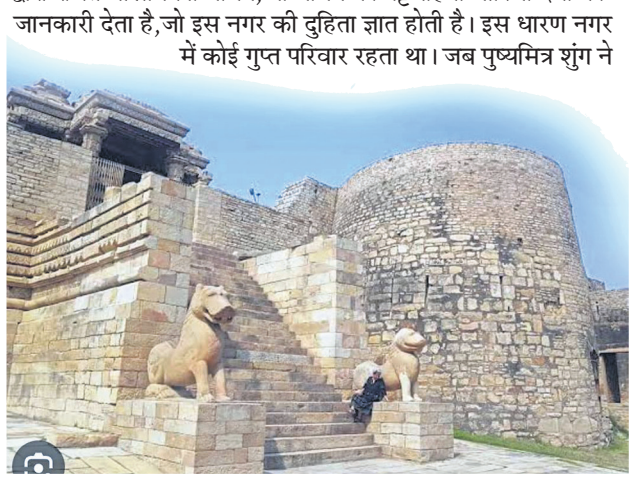

पद्मावती (पवाया ग्वालियर) के भवनाग राजाओं ने प्रयाग में जिस श्रीगुप्त को सामंत नियुक्त किया था, वह धारौन का ही था। बाद में गुप्त वंश ने नाग वंश की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। श्रीगुप्त के ही वंशज समुद्र गुप्त द्वारा अपने पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय का विवाह नाग वंश की राजकुमारी कुबेरनागा से किया। कुबेरनागा की राजकुमारी वाकाटकललाम प्रभावती गुप्त ने बड़े गौरव से अपने आप को "धारण-सगोत्रा" कहा है।

इस प्रकार पढावली गांव मौर्य, शुंग, नाग और गुप्त वंश के इतिहास का साक्षी एक वैभवशाली नगर धारौन के रूप में जाना जाता रहा है। इसके समीप स्थित बटेश्वरा, मितावली, कुतवार के अवशेष एक समृद्ध विरासत का संकेत देते हैं।

वर्तमान में पढावली में एक गढ़ी और उससे जुड़े विशाल मंदिर के अवशेष विद्यमान हैं। इस गढ़ी के देवालय में मूल रूप से गर्भगृह एवं एक मंडप का ही समावेश था। वर्तमान में इसका मुख मंडप ही शेष रह गया है। मंदिर के अवशेषों में प्राप्त एक विशाल नंदी की प्रतिमा से यह प्रतीत होता है कि ऊंचे अधिष्ठान पर निर्मित यह एक शिव मंदिर ही था।

इस मंदिर के अंतः भाग पर दीवारों पर हिंदू देवी-देवताओं की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं जिनमें ब्रम्हा, विष्णु, महेश, गणेश, काली, सूर्य आदि प्रमुख है। मंदिर में विष्णु के विभिन्न अवतार उनका चरित लीलाओं के साथ-साथ दीवारों पर भागवत, रामायण एवं पुराणों से संबंधित प्रतिमाएं भी उत्कीर्ण हैं। यह प्रतिमाएं उस काल की कला, संस्कृति को प्रतिबिंबित करती है।

कला के विभिन्न लक्षणों के अध्ययन से इस मंदिर का निर्माण 10 वीं सदी में होना प्रतीत होता है। कालांतर में इस मंदिर की सुरक्षा हेतु गोहद के जाट राणाओं द्वारा इस मंदिर को एक गढ़ी में परिवर्तित कर दिया गया। पढावली के अवशेष भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षित किए गए हैं। इनके संरक्षण एवं संधारण का कार्य निरंतर चल रहा है। यदि आपकी देश के 2000 वर्ष पूर्व के ऐतिहासिक स्थल अथवा इतिहास के छुपे रत्नों को देखने में रुचि है तो पढावली में आपका स्वागत है। यहां पढावली,मितावली बटेश्वरा में दूर-दूर तक फैली पुरा संपदा आपको यह सोचने को बाध्य कर देगी कि 2000 वर्ष से भी पूर्व आपकी संस्कृति कितनी समृद्ध और कितनी महान थी?

साहित्य ग्रंथों में अयोध्या नगरी का वर्णन

सीता के प्रति राम के व्यवहार के कुछ संदर्भ वाल्मीकि रामायण में मिलते हैं। वाल्मीकि का संदर्भ इसलिए महत्वपूर्ण है,क्योंकि यह रामकथा का प्राचीनतम व्यवस्थित रूप है। खास बात ये है कि वाल्मीकि की स्त्रियां प्रतिवाद नहीं करती हैं। प्रतिवाद तो दूर की बात है,वे प्रायः चुप रहती हैं। बोलती तक नहीं हैं। सीता भी उनमें से एक हैं। लोक से जरूर हमें सीता के द्वारा प्रतिवाद दर्ज करने के कुछ उदाहरण मिलते हैं। मैथिली लोक गीत इस मायने में खास हैं। कुछ अवधी-भोजपुरी गीत भी इस कड़ी में जुड़ते हैं। इनके अलावा फल्गु नदी से जुड़े किस्से में भी सीता की नाराजगी का जिक्र है।

दशरथ की मृत्यु के बाद राम,सीता और लक्ष्मण उनका श्राद्ध करने गया ठाकुर बाड़ा जाते हैं। श्राद्ध के साजो-सामान की व्यवस्था में राम को कुछ अधिक समय लग जाता है। मुहूर्त निकल जाने की आशंका में पंडित के कहने पर सीता नदी किनारे की बालू के पिंड बनाकर दान संपन्न करती हैं। लौटने पर जब राम को पूरे वाकये की जानकारी मिलती है तो आदतन वह तस्दीक करना चाहते हैं कि सीता की बात में सच्चाई है या नहीं। वह नदी, गाय और ब्राह्मण से गवाही मांगते हैं,पर तीनों ही मुकर जाते हैं। उनके झूठ पर कुपित हो सीता श्राप दे बैठती हैं। विप्र को अकिंचनता का, गाय को मैला खाने का और नदी को सूख जाने का। ब्राह्मण से वह कहती हैं कि दान-दक्षिणा से वह चाहे कितना ही कमा ले,लेकिन उसे कभी पूरा न पड़ेगा। वह हमेशा दरिद्र ही बना रहेगा। गाय को पीछे से पूजे जाने (गोदान) और आगे से मैला खाने के लिए श्रापती हैं। फल्गु नदी को पानी से महरूम करती हैं। कहते हैं इसी वजह से फल्गु नदी की सतह सूखी दिखती है। पानी बालू के नीचे एक फुट गहराई में बहता है। लोक की इस कथा से ध्वनित होता है सीता (स्त्री) की परीक्षाएं अनगिनत थीं। वाल्मीकि रामायण प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास को समझने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। हिंदी भाषी क्षेत्र में रामकथा को लोकप्रिय बनाने का श्रेय रामचरितमानस को जाता है,जो वाल्मीकि रामायण पर ही आधारित है। शुरुआत में वाल्मीकि की रामायण में 6000 श्लोक थे,जो क्रमशः बढ़कर 12000 और अंततः 24000 हो गए। विषय वस्तु के आधार पर जब हम इस ग्रंथ का विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि इसमें विकास के चार स्तर निहित हैं। इसकी शुरुआत 400 ईसा पूर्व की संभावित है और अंतिम अवस्था 1200 ईसवी की मानी जाती है। कुल मिलाकर सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास के कई चरण रामायण में समाहित हैं।

डॉ . नीलिमा पांडेय
प्रोफेसर, लखनऊ विश्वविद्यालय

महाकाव्य का महत्व इस बात में है कि यह वर्ग विभाजित, पितृसत्तात्मक, राज्य सत्ता और आधारित समाज में व्यवस्थित कार्य संचालन के लिए न सिर्फ कई आदर्श निर्धारित करता है,बल्कि उन्हें पोसता भी है। रामायण में इस बात पर बल दिया गया है कि विभिन्न वर्गों और जातियों को अपने लिए निर्दिष्ट कार्यों को संपन्न करना चाहिए। यदि कोई ऐसा नहीं करता है और अपनी जाति के लिए निर्धारित कार्यों से भटकता है तो उसे निर्ममता से कठोर दंड देने चाहिए। राजा के लिए भी रामायण में निर्देश है कि वह धर्म के बनाए आदर्शों पर चले। इस प्रकार वह वर्ण और परिवार की रक्षा कर सकेगा।

परिवार के लिए निर्देश है कि पुत्र को पिता की, छोटे भाई को बड़े भाई की और पत्नी को पति की आज्ञा का पालन करना चाहिए। इनकी बानगी हम राम, भरत, लक्ष्मण और सीता में देखते हैं। अलेक्जेंडर कनिंघम का भारतीय पुरातत्व को महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यही वजह है कि हम उन्हें भारतीय पुरातत्व का जनक मानते हैं। कनिंघम ने दुरूह परिस्थितियों में भी न सिर्फ इतिहास और पुरातत्व के प्रति अपने लगाव को बनाए रखा,बल्कि किए गए अन्वेषण को प्रकाशित करने के उत्तरदायित्व को भी बखूबी निभाया।

उनकी पुस्तक 'एंशिएंट जियोग्राफी ऑफ इंडिया' में रामबकीय नामक एक स्थान का उल्लेख मिलता है। यूनानी योद्धा सिकंदर के समय इस स्थान का अस्तित्व था। इतिहासकार एरियन ने इसका उल्लेख किया है। यह अफगानिस्तान का एक छोटा सा गांव है। चीनी यात्री युवान च्वांग के हवाले से कनिंघम ने बताया है कि 629-645 ईसवी के दौरान की गई अपनी यात्रा के समय युवान च्वांग ने पाया कि वहां के लोग राम से परिचित थे। हालांकि उनके राम वाल्मीकि के राम से कुछ अलग थे। रामबकीय नाम के इस स्थान को कुछ विद्वान राम की जन्मभूमि से जोड़ते हैं। इसकी वजह ये है कि जो लोग राम की ऐतिहासिकता में यकीन रखते हैं वह राम की तिथि 2000 ईसा पूर्व के आसपास तय करके चलते हैं। यह इस आधार पर किया जाता है कि राम दशरथि महाभारत के युद्ध के लगभग 65 पीढ़ियों पहले हुए थे। महाभारत के युद्ध का समय 1000 ईसा पूर्व अनुमानित है। इसलिए हमारे सामने पर्याप्त रूप से अयोध्या के बसने और अयोध्या के राम के बीच 1000 वर्षों से अधिक का अंतर आता है। इसी कठिनाई की वजह से कुछ विद्वान अयोध्या को अफगानिस्तान में ढूंढते हैं।

इतिहास के अध्ययन में जब हम प्राचीन से अर्वाचीन की तरफ क्रमशः बढ़ते हैं तब साहित्य में अयोध्या का उल्लेख ढूंढते हुए हम अथर्ववेद तक पहुंचते हैं। अथर्ववेद का समय 1000-800 ईसा पूर्व माना जाता है। अयोध्या का प्राचीनतम उल्लेख हमें अथर्ववेद में मिलता है। यहां इसे देवताओं की नगरी बताया गया है जिसमें नौ प्रवेश द्वार हैं। संयुक्त निकाय जो 300 ईसा पूर्व का पाली ग्रंथ है उसमें अयोध्या को गंगा के किनारे बसा नगर बताया गया है। गंगा और सरयू में कोई भ्रम है इसे निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। आरंभिक पाली ग्रंथ कई नदियों से परिचित दिखते हैं। वे गंडक, निरंजना आदि का उल्लेख भी करते हैं। सरयू का उल्लेख भी इन ग्रंथों में सरभू के रूप में मिलता है। हालांकि उसे अयोध्या से नहीं जोड़ा गया है।

मुनीश चंद्र जोशी (एएसआई) ने अयोध्या की तलाश में वाल्मीकि रामायण के संदर्भ को आधार बनाया। उन्होंने अयोध्या को सरयू से कुछ दूरी पर ढूंढा। वाल्मीकि रामायण का उत्तरकांड ईसा की आरंभिक शताब्दियों में रचा गया। उसमें अयोध्या और सरयू के बीच की दूरी छह कोस अथवा 12 मील बताई गई है,लेकिन वर्तमान अयोध्या सरयू के तट पर है। इसलिए इतिहास पढ़ते समय यह सूचना दुविधा में डालती है।

सरयू पूरब की तरफ बढ़ते हुए बलिया और सारन जिले में घाघरा कहलाती है। सारन जिले में यह गंगा में खो जाती है। सरयू के मार्ग बदलते रहने की प्रवृत्ति के कारण कुछ विद्वान बलिया के खैराडीह इलाके को अयोध्या मानना चाहते है। चीनी यात्री युवान च्वांग का विवरण भी हमें दुविधा में डालता है। सी-यू-की की सूचना के अनुसार सातवीं शताब्दी में अयोध्या में बौद्ध धर्म का प्रभुत्व था। युवान च्वांग अयोध्या में ब्राह्मणों की उपस्थिति से इंकार नहीं करता है,किंतु उसने विहारों और मंदिरों का जो अनुपात बताया है (100:10) वह मंदिरों की कमजोर स्थिति दर्शाता है। परंपरा से अयोध्या में जैनियों की भी उपस्थिति बताई गई है। इसे कई जैन तीर्थंकरों का जन्मस्थान माना गया है। अयोध्या को जैन ग्रंथ कोसल की राजधानी बताते हैं,लेकिन उसकी सुनिश्चित भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश नहीं डालते। गुप्त काल (319-550 ईसवी) के बाद ही साहित्य में राम को वर्तमान अयोध्या से अभिन्न किया गया।